श्रद्धा

फूलचंद

करुणा सागर आध्यात्मिक मार्गदर्शक फूलचंद ने संपूर्ण पृथ्वी पर किसी भी प्रकार के भेदभाव बिना हजारों घंटों के प्रवचनों एवं अनेक पुस्तकों के माध्यम से समस्त जीवों को निज शुद्धात्मा का परिचय दिया है। आप स्वयं को देहरूपी राख की दीवार का पड़ोसी मानते हैं और मोक्षमार्ग का मुसाफिर जानते हैं। आपके ऑडियो-विडियो प्रवचन एवं साहित्य www.fulchandshastri.com पर नि:शुल्क डाउनलॉड किये जा सकते हैं। आपके प्रवचन विविध टेलिविजन चैनलों पर प्रतिदिन प्रसारित होते हैं।

प्रत्येक आत्मा में आत्मानुभूति एवं अतीन्द्रिय आनंद प्रकट करने का सामर्थ्य है। फूलचंद भावना भाते हैं कि उनके इस पृथ्वी से अलविदा होने से पहले १४२ ज्ञान दीपक प्रज्वलित हों, फिर १४२ ज्ञान दीपकों की परम्परा से ४१५ ज्ञान दीपक, ४१५ ज्ञान दीपकों की परम्परा से १ लाख ज्ञान दीपक और १ लाख ज्ञान दीपकों की परम्परा से अनंत ज्ञान दीपक प्रज्वलित हों। जो आत्मखोजी मिथ्यात्व एवं अज्ञानरूपी अंधकार से मुक्त होना चाहते हों, वे फूलचंद की प्रज्वलित ज्ञानज्योति के सानिध्य में रहकर अपनी भी ज्ञानज्योति प्रज्वलित कर सकते हैं। जीवन के इस अपूर्व एवं अमूल्य अवसर का लाभ लेकर ज्ञान दीपक! प्रज्वलन आत्म साधना का शुभारंभ करने हेतु आध्यात्मिक साधना केन्द्र, उमराला में हार्दिक स्वागत हैं।

श्रद्धा

लेखक : फूलचंद

प्रथम आवृत्ति : 1 जनवरी 2019

प्रत : 1000

प्रकाशक :

आध्यात्मिक साधना केन्द्र-प्रधान केन्द्र
पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी प्रवचन हॉल,
चोगठ रोड, उमराला, जि. भावनगर (गुजरात)
Website : www.fulchandshastri.com
E-mail : ask@fulchandshastri.com

प्राप्ति स्थान :

आध्यात्मिक साधना केन्द्र-प्रधान केन्द्र
पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी प्रवचन हॉल,
चोगठ रोड, उमराला, जि. भावनगर (गुजरात)
किशोरभाई जैन : +91-2843-235202/03
धर्मेन्द्रभाई जैन : +91-9898245201

टाईप सेटिंग एवं मुद्रक : मल्टी ग्राफिक्स
18, खोताची वाडी, वर्धमान बिल्डींग, 3रा माला,
प्रार्थना समाज, वी. पी. रोड, मुम्बई - 400 004.
फोन : 2387 3222 / 2388 4222
Email : support@multygraphics.com
Website : www.multygraphics.com

चैतन्य स्वभावी निज शुद्धात्मा को
श्रद्धान में टंकोत्कीर्ण करके
परिणति की निर्मलता को उपलब्ध
समस्त सम्यग्दृष्टी ज्ञानी धर्मात्माओं को

सविनय समर्पित

आदरणीय विद्वान श्री फूलचन्दभाई शास्त्री द्वारा लिखित 'श्रद्धा' कृति प्रकाशित करते हुए आध्यात्मिक साधना केन्द्र परिवार अत्यंत हर्ष का अनुभव करता है। इससे पूर्व भी लेखक की अनेक रचनाओं का प्रकाशन आध्यात्मिक साधना केन्द्र, उमराला द्वारा विगत अनेक वर्षों से हो रहा है।

लेखक की अनेक रचनाओं में से हिन्दी एवं गुजराती भाषाओं में प्रकाशित 'ज्ञान से ज्ञायक तक' एवं 'मंगल सूत्र - चैतन्य स्वभाव' नामक रचना देश-विदेश में सर्वाधिक लोकप्रिय हुई है। श्रद्धा एवं चारित्र सम्बन्धी गहन रहस्य से भरी हुई इस 'श्रद्धा' कृति में अविरत सम्यग्दृष्टी की जीवादि तत्त्वों की श्रद्धा के सम्बन्ध में एवं महाव्रत या अणुव्रत न होने पर भी चौथे गुणस्थानवर्ती ज्ञानी को सम्यग्दर्शन एवं स्वरूपाचरण चारित्र के बल पर प्रतिसमय असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा होती है। इस विषय में अत्यंत गहराई से विवेचन किया गया है। अनेक वर्षों के दीर्घ इंतज़ार के पश्चात् इस कृति का प्रकाशन हो रहा है, अतः साधक को इस कृति का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

रामगंजमण्डी निवासी श्री दिनेश जी जैन ने 'प्रतीति एवं परिणति' पर हुए लेखक के प्रवचनों को लिपिबद्ध किया है एवं सिंगापुर निवासी श्रीमती दीपाबेन ने इस कृति का विशेष अध्ययन एवं निरीक्षण करके प्रस्तावना लिखी है, अतः हम उनका भाव सहित आभार व्यक्त करते हैं।

मल्टी ग्राफिक्स ने 'श्रद्धा' का मुद्रण करके आपके करकमलों तक पहुँचाने में हृदयपूर्वक सहयोग दिया है, अतः हम मल्टी ग्राफिक्स का आभार व्यक्त करते हैं। साथ ही जिन महानुभावों का इस कृति के प्रकाशन में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग प्राप्त हुआ है, उन सभी महानुभावों को धन्यवाद देते हैं और भावना भाते हैं कि वीतरागी वाणी का प्रचार-प्रसार सदैव होता रहें।

- धनराज हुंडिया सह मांगीलाल चंदन, मुंबई

'फूलचंद' - चंद गुरुदेव ने आत्मानुभव प्रमाण से अब तक १४४ देशों में चैतन्य की पुकार करके आत्मार्थीजनों पर अनंत उपकार किया है। १ से १० जनवरी, २०१७ तक ओशियानिया में मिशन पर्यटन समय १० दिनों तक अन्न-जल भूलकर सम्यग्दर्शन के पिपासुओं के लिए 'श्रद्धा' की रचना की थी। परन्तु कम्प्यूटर में खराबी के कारण लुप्त होने वाली 'श्रद्धा' का २४ अक्टूबर, २०१८ के दिन कम्प्यूटर में सहज ही पुनः दर्शन हुआ, जो क्रमबद्धपर्याय की याद दिलाता है और प्रेरणा देता है कि अनादिकाल से खोई सम्यक् 'श्रद्धा' भी पुरुषार्थी को सहज ही प्राप्त हो सकती है।

१९ प्रकरणों में रचित 'श्रद्धा' में समझाया है कि 'सम्यग्दृष्टी की दृष्टि' शुद्धात्मा पर होने से पर्याय में 'चैतन्य चाँद से वीतरागता के फूल' खिलते हैं। सम्यग्दृष्टी को ही 'देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा' होती है। साधक को 'प्रतीति एवं परिणति' की निर्मलता से 'ज्योत से ज्योत जले' ज्ञान दीपक! प्रज्वलित हो!!! सम्यग्दृष्टी की दशा ऐसी होती है, मानो देह 'सम्यग्दृष्टी के वस्त्र' ही हो। देहरूपी वस्त्र से 'निर्लेप सम्यग्दृष्टी' ने 'एक समय में सम्यग्दर्शन' पाकर 'स्वरूप की महिमा' समझी है। 'जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि' उक्ति अनुसार सम्यग्दृष्टी की दृष्टि में प्रत्येक आत्मा परमात्मा है, इसलिए 'धर्म का मूल सम्यग्दर्शन' कहा है। मिथ्यादृष्टी 'सिरफिरा मुसाफिर', शास्त्रों में से 'सम्यग्दृष्टी के भोग निर्जरा के हेतु' पढकर ज्ञानी की बाह्य नकल करता है। यद्यपि 'सम्यग्दृष्टी का पागलपन' निराला है, तदपि उनकी नकल नहीं करनी चाहिए। 'अविरत सम्यग्दृष्टी से तीर्थंकर' होने वाले ज्ञानी, चैतन्य तत्त्व की 'श्रद्धा एवं जागृति' के बल पर निराकुल रहते हैं, इसलिए 'श्रद्धा से सबुरी' अर्थात् सम्यग्दर्शन होने पर सब्र कहा है। आत्मार्थी यथार्थ 'श्रद्धानी योद्धा से सिद्धा' की अवस्था को प्राप्त सिद्धों से प्रेरित होकर सिद्धपुर के आनंद भवन में वास करें, ऐसी भावना भाती हूँ।

- दीपा, सिंगापुर

०१. श्रद्धा १
०२. सम्यग्दृष्टी की दृष्टि.....५
०३. चैतन्य चाँद से वीतरागता के फूल ९
०४. देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा.....१५
०५. प्रतीति एवं परिणति.....१९
०६. ज्योत से ज्योत जले २४
०७. सम्यग्दृष्टी के वस्त्र.....२७
०८. निर्लेप सम्यग्दृष्टी.....३०
०९. एक समय में सम्यग्दर्शन ३३
१०. स्वरूप की महिमा ३६
११. जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि ४०
१२. धर्म का मूल सम्यग्दर्शन.....४२
१३. सिरफिरा मुसाफिर ४४
१४. सम्यग्दृष्टी के भोग निर्जरा के हेतु ४७
१५. सम्यग्दृष्टी का पागलपन ४९
१६. अविरत सम्यग्दृष्टी से तीर्थंकर.....५२
१७. श्रद्धा एवं जागृति.....५३
१८. श्रद्धा से सबुरी.....५६
१९. श्रद्धानी योद्धा से सिद्धा.....५७

१. श्रद्धा

चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्य मात्र है, ज्ञान मात्र है। मैं शुद्ध चैतन्य मात्र, ज्ञान मात्र भगवान आत्मा हूँ, ऐसी जागृति प्रतिसमय बनी रहे, इस आत्मजागृति का नाम धर्म है। देह की प्रत्येक क्रिया के काल में और विकल्पों के बहते प्रवाह के काल में, सम्यग्दृष्टी ज्ञानी धर्मात्माओं को निरंतर यह जागृति रहती है कि, मैं चैतन्य तत्त्व इस देह की किसी भी क्रिया में और विकल्पों के बहते प्रवाह में कहीं भी मिला नहीं हूँ। प्रतिसमय स्वयं की चैतन्य सत्ता का बोध ही आत्मजागृति है, यही धर्म है। चैतन्य तत्त्व की स्वसंवेदन प्रत्यक्ष निर्विकल्प अनुभूति होते ही देह होने पर भी देहातीत दशा प्रकट होती है, इतना ही नहीं, विकल्प होने पर भी विकल्पातीत दशा प्रकट होती है। आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति होने पर आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद का सागर उछलता है, फिर भी ज्ञानी की दृष्टि उस अतीन्द्रिय आनंद के सागर की ओर भी नहीं जाती और दृष्टि चैतन्य तत्त्व पर ही टिकी रहती है, यह चैतन्य तत्त्व ही मैं हूँ। आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति होते ही ज्ञान दीपक प्रज्वलित होता है, ज्ञान दीपक प्रज्वलित होते ही आत्मजागृतिरूप अपूर्व धर्म प्रकट होता है। जिस समय अनन्त गुणाधिपति चैतन्य स्वरूपी भगवान आत्मा श्रद्धा में टंकोत्कीर्ण होता है, उसी समय अनन्त सिद्ध परमात्मा श्रद्धा में स्थापित होते हैं।

आत्मानुभूति होने पर मैं चैतन्य तत्त्व हूँ, ऐसी यथार्थ श्रद्धा होती है, सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही सात तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा होती है। अनादिकाल से जीव-अजीव को अभेद और पुण्य-पाप में भेद मानकर, आश्रव-बंध को सुखरूप एवं संवर-निर्जरा-मोक्ष को दुःखरूप मानकर

मिथ्यात्व का पोषण किया था। सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही नौ पदार्थ की यथार्थ श्रद्धा होती है।

दृष्टि के विषयभूत भगवान आत्मा में सर्वज्ञत्व शक्ति शामिल होने से, सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही सच्चे देव सर्वज्ञ भगवान की श्रद्धा होती है। सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही अनुभव प्रमाण से शास्त्र की यथार्थ श्रद्धा होती है। **यह हो सकता है कि ज्ञानी को समस्त शास्त्र कंठस्थ न हो, परन्तु जिसने एक शुद्धात्मा को जान लिया, उसने द्वादशांग को जान लिया।** सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही चारित्र गुण की पर्याय में आंशिक शुद्धि प्रकट होने से गुरु की श्रद्धा होती है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को यथार्थ श्रद्धांजलि होती है। अपनी श्रद्धा देव-शास्त्र-गुरु को अर्पण कर देना श्रद्धांजलि नहीं है, परन्तु सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को अपनी श्रद्धा में यथार्थरूप में स्वीकार करना, यथार्थ श्रद्धांजलि है।

सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही सहज भेदविज्ञान होता है। स्वयं की चैतन्य सत्ता स्वतंत्र एवं स्वाधीन अनुभव में आने से सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही प्रत्येक द्रव्य की स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता की यथार्थ श्रद्धा होती है। सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही सर्वज्ञता की श्रद्धा होने से क्रमबद्ध पर्याय की यथार्थ श्रद्धा होती है। सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही देव-शास्त्र-गुरु को सम्यग्दर्शन की पर्याय में परिणमित नहीं होता जानकर कार्य-कारण व्यवस्था एवं उपादान और निमित्त कारण के स्वरूप की यथार्थ श्रद्धा होती है। सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही मोक्षमार्ग का शुभारंभ होता है। सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही ज्ञानी की ऐसी दशा प्रकट होती है, जैसे उन्होंने संसार सागर को एक चम्मच में भर लिया हो।

श्रद्धा अर्थात् अपनापन, ज्ञान अर्थात् सच्चापन और चारित्र अर्थात् अच्छापन। जैसे लोक में किसी भी व्यक्ति को अपना मान लेने पर वह व्यक्ति सहज ही सच्चा और अच्छा भासित होने लगता है। ऐसे ही श्रद्धा में सम्यक्पना प्रकट होने पर ज्ञान और चारित्र सहज ही सम्यक् हो जाते हैं। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' में प्रयुक्त सम्यक् शब्द सिर्फ दर्शन का ही विशेषण नहीं है, बल्कि दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र तीनों गुणों के यथार्थ परिणमन को सूचित करता है।

श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र को मोक्षमार्ग नहीं कहा है। श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र आत्मा के गुण हैं, ये गुण तो भव्य एवं अभव्य सभी जीवों में समानरूप से पाये जाते हैं। गुण का सम्यक् परिणमन मुक्ति का कारण होता है। इसलिए सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र को मोक्षमार्ग एवं मिथ्या श्रद्धा, ज्ञान एवं चारित्र को संसारमार्ग कहा है।

निगोदिया हो या सिद्ध भगवान हो, सभी जीव श्रद्धानी होते हैं, क्योंकि श्रद्धा आत्मा का गुण है। जैसे सिर में दर्द होने के कारण पूरे शरीर को एक स्थान पर बंधन में रहना पड़ता है, अकेले सिर को ही नहीं। ऐसे ही एक श्रद्धा गुण के अशुद्ध परिणमन के कारण आत्मद्रव्य को संसार परिभ्रमण करना पड़ता है, अकेले श्रद्धा गुण को ही नहीं। एक श्रद्धा गुण के शुद्ध परिणमन के कारण आत्मा दृष्टिमुक्त होता है। मुक्ति भी अनेक प्रकार की होती है, उनमें सर्वप्रथम मुक्ति का नाम मिथ्यात्व से मुक्ति है। यह मुक्ति इस पंचमकाल में भी प्रकट हो सकती है। कोई भी संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव दृष्टिमुक्त हो सकता है।

सम्यग्दर्शन के बल पर ज्ञानी को राग के विकल्पों में रंचमात्र एकत्व नहीं होता है, क्योंकि निर्विकल्प अनुभूति में अनुभव में आने वाले त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा में राग का विकल्प कहीं नहीं पाया जाता। चैतन्य तत्त्व निराकुल है, राग का विकल्प आकुलतामय है। चैतन्य तत्त्व नित्य है और राग का विकल्प अनित्य है। चैतन्य तत्त्व सुख स्वरूप है और राग का विकल्प दु:खरूप है। मैं चैतन्य तत्त्व हूँ और मैं राग का विकल्प नहीं हूँ।

जैसे ज्ञान गुण का परिणमन जानना है ऐसे ही श्रद्धा गुण का परिणमन मानना है, अपनापन करना है। अपनापन आत्मा का स्वभाव है। **आत्मानुभूति होने पर समस्त परद्रव्य एवं परभावों से अपनापन छूट जाता है और एक मात्र त्रिकाल ध्रुव भगवान आत्मा में अपनापन स्थापित हो जाता है।**

अनन्त दु:ख से मुक्त होने के लिए इस जीव ने भूतकाल में अनन्त बार मुनिपद धारण किया, फिर भी संसार परिभ्रमण नहीं मिटा। प्रकृति की व्यवस्था ही ऐसी है कि मिथ्याश्रद्धा के अपराध के फल में अनन्त जन्म-मरण ही होते

हैं। जो अपने से अत्यंत पर है, ऐसे संयोगो का मालिक स्वयं को मानना, घोर अपराध ही है। इस अपराध का फल संसार कारावास है।

प्रकृति अपराध के फल में पक्षपात नहीं करती है। मनुष्य हो या देव हो, तिर्यंच हो या नारकी हो, गृहस्थ हो या मुनि हो, मिथ्यात्व के अपराध का फल सभी को एक-सा भोगना पड़ता है, जन्म-मरण करना पड़ता है। जैसे मुनिदीक्षा लेने से पहले स्वयं को रमेश मानने वाला जीव दीक्षा लेने के पश्चात् स्वयं को सुरेशसागर या सुरेशसुरि मानने लगता है। रमेश एवं सुरेशसागर या सुरेशसुरि हो, वह दोनों ही अवस्थाओं में स्वयं को देहस्वरूप ही मानता है। यही कारण है कि वह सम्यग्दर्शन को उपलब्ध नहीं होता है और सम्यग्दर्शन के बिना मुनिधर्म कहाँ? चौथी कक्षा उत्तीर्ण किये बिना छठवीं-सातवीं कक्षा कहाँ?

सम्यग्दर्शन के बिना मैंने भूतकाल में ग्यारह अंग और नौ पूर्व का ज्ञान पाकर एवं महाव्रत को पालकर भी मुक्ति के मार्ग पर यात्रा नहीं की। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र मिथ्या ही रहे। **गुरु ज्ञान देते हैं, गुरु दीक्षा देते हैं, परन्तु गुरु श्रद्धा नहीं देते।** जब शिष्य को स्वयं के पुरुषार्थ से आत्मद्रव्य की स्पर्शना होती है, मध्यलोक से चैतन्यलोक की यात्रा होती है, तब सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

श्रद्धा को परम दुर्लभ कहा है। क्योंकि लोक में ज्ञान का आदान प्रदान किया जा सकता है, परन्तु श्रद्धान का नहीं। यदि स्वयं की श्रद्धा किसी अन्य को दी जा सकती तो तीर्थंकर भगवान धर्मोपदेश के साथ-साथ सम्यग्दर्शन भी दे देते! हे साधक! दूसरों की आँखों से देखा नहीं जा सकता। मोक्षमार्ग को देखने के लिए स्वयं की आँख चाहिए, स्वयं की दृष्टि चाहिए।

२. सम्यग्दृष्टी की दृष्टि

धर्म भीड़ का मार्ग नहीं है, अकेले का मार्ग है। याद रहे, धर्म के नाम पर जो भी संगठन होते हैं, वे अत्यंत खतरनाक हैं। क्योंकि संगठन किसी के खिलाफ बनाना पड़ता है और धर्म तो भीड़ से हटकर स्वयं में स्थिर होने का नाम है।

दृष्टि एवं दृष्टी इन दोनों शब्दों में 'टि' ह्रस्व एवं 'टी' दीर्घ का प्रयोग करने से शब्द का अर्थ बदल जाता है। दृष्टि अर्थात् श्रद्धान एवं दृष्टी अर्थात् श्रद्धानी। सम्यग्दृष्टी की दृष्टि ऐसी निर्मल होती है कि उन्हें प्रत्येक ज्ञेयों के ज्ञान में प्रतिबिंबित होने के काल में यह श्रद्धान होता है कि किसी भी ज्ञेय का ज्ञान में प्रवेश हो ही नहीं सकता। जैसे कांच के घन गोले में पदार्थ प्रतिबिंबित होते हैं, परन्तु कांच के घन में कहीं भी प्रवेश करने के लिए कोई अवकाश ही नहीं है, ऐसे ही असंख्यात प्रदेशी अखण्ड भगवान आत्मा का प्रत्येक प्रदेश ज्ञानरस से भरपूर है। दो प्रदेशों के मध्य में किसी भी परद्रव्य एवं परभाव को प्रवेश करने के लिए अवकाश ही नहीं है।

जैसे मिथ्यादृष्टी को अपने शरीर के माता-पिता, भाई-बहन आदि प्रियजनों के सम्बन्ध में सोचना नहीं पड़ता, ऐसे ही सम्यग्दृष्टी को यह सोचना नहीं पड़ता कि मैं शुद्धात्मा हूँ। अज्ञानी स्वयं को देहरूप मानकर जीवन जीता है और ज्ञानी स्वयं को आत्मा मानकर जीते हैं। **देह में एकत्व करके जीने में और आत्मा में एकत्व करके जीने में संसार और मुक्ति जितना अंतर है।**

राजा के बचपन का मित्र संन्यासी हो गया था। संन्यासी मित्र के आने के समाचार सुनकर राजा ने अपने राज्य को दीपकों एवं फूलों से सजाया। राजा स्वयं संन्यासी का स्वागत करने के लिए गये। जब राजा ने संन्यासी को देखा तो उन्हें संन्यासी के कीचड़ से मलिन पैरों को देखकर आश्चर्य हुआ। राजा ने पूछा, अभी तो बरसात भी नहीं हो रही है, फिर भी आपके पैर पर इतना कीचड़ क्यों है? वह संन्यासी अहंकार से बोला कि यदि तुम अपने राज्य को सजाकर अपनी अमीरी दिखा रहे हो, तो मैं भी कुछ कम नहीं हूँ, मैं कीचड़ वाले पैरों से यहाँ चलकर अपनी फकीरी दिखा रहा हूँ। राजा ने अपने पुराने मित्र को गले लगा लिया और कहा कि मैंने सोचा था कि तुम बदल गये होंगे, परन्तु तुम बदले नहीं हो। वही पुराना अहंकार!

सम्यग्दर्शन के अभाव में कोई अज्ञानी भोग का, तो कोई अज्ञानी त्याग का प्रदर्शन करना चाहते हैं। दोनों ही अज्ञानी मिथ्या प्रदर्शन में अटककर सम्यग्दर्शन से वंचित रह जाते हैं। याद रहे, सम्यग्दृष्टी स्वयं के सम्यग्दर्शन का प्रदर्शन करना कदापि नहीं चाहता है। क्योंकि अंधों को आँख दिखाना मूर्खता ही होगी। वास्तव में अंधे को उपदेश की नहीं, उपचार की अधिक आवश्यकता है। ज्ञानी के उपदेश को सुनकर तत्त्वविचार करना यही एक मात्र उपचार है। मोक्षमार्ग पर चलने के लिए प्रत्येक दृष्टिहीन को स्वयं का उपचार स्वयं ही करना होता है।

दीक्षा लेने के बाद चार हाथ जमीन नहीं देखी, नग्नता न प्रकट हुई, तो फिर नियम लेकर नियम तोड़ने का फल अनन्त गुना अधिक है। जिनमुद्रा के साथ समझौता नहीं किया जा सकता। मुनि की दशा निराली होती है। समाज के हित के लिए जो स्वयं के मूलगुणों के पालन में दोष नहीं लगने देते हैं, ऐसे मुनि वनविहारी ही होंगे। माईक का उपयोग करना, चश्मे का उपयोग करना, शरीर घायल होने पर कपड़े की पट्टी लगाना, धर्म के प्रचार के लिए धन एकत्रित करना, आदि समाजसेवा के नाम पर स्वयं के व्रत को खंडित करना और यह सब कुछ करके भी स्वयं को साधु मानकर दूसरों को आशीर्वाद देना और हित करने का वचन देना। इन लक्षणों के धारक मुनि तो शहरों में भी गली-गली में मिल जाते हैं।

अहो! भावलिंगी साधु का क्या कहना? चलते फिरते सिद्धों का क्या कहना? जिनका शरीर तो वन-उपवन में होता है, परन्तु आत्मा आनंदभवन में विराजमान होता है। जिनका शरीर तो श्मशान में होता है, परन्तु आत्मा चैतन्य महल में निवास करता है। जिनका शरीर गिरनार पर्वत पर होता है, परन्तु आत्मा चैतन्य शिखर पर स्थित होता है, जिनका शरीर तो मध्यलोक में दिखाई देता है, परन्तु आत्मा चैतन्यलोक का वासी होता है। धन्य है उन भावलिंगी साधु की मुनिदशा एवं मुनिदशा का मूल सम्यग्दर्शन।

मैं चैतन्य तत्त्व हूँ, मैंने अनादि काल से किसी भी परद्रव्य को ग्रहण ही नहीं किया है और अनन्त काल तक किसी भी परद्रव्य को ग्रहण ही नहीं करुंगा, ऐसा ज्ञान में जानना, इस जानने वाले ज्ञान का नाम प्रत्याख्यान है, त्याग है। जैसे किसी भी वस्तु को खरीदने के लिए सिक्के के एक पहलू को नहीं, बल्कि पूरे सिक्के को छोड़ना होता है, ऐसे ही वस्तु को ग्रहण करने के पहलू को नहीं, बल्कि ग्रहण एवं त्याग के विकल्पों से पार होने पर ही नयातिक्रांत होकर चैतन्य तत्त्व की अनुभूति होती है।

आत्मानुभूति से अपरिचित अज्ञानी को ऐसा लगता है कि मैं शुद्धात्मा हूँ, ऐसा मान लेने मात्र से क्या होगा? अरे भाई! **अनादि काल से स्वयं को देह मानता है, इसलिए तो देह के साथ रहता है, यदि स्वयं को अनन्त गुणाधिपति सिद्ध मानेगा, तो सिद्धों के साथ विराजमान होगा।** ज्ञान में जानने में आने वाले पदार्थों का ज्ञान की पर्याय में अस्तित्व नहीं है। यदि कोई भी ज्ञेय, ज्ञान की पर्याय में जानने में आने के कारण ज्ञान की पर्याय में मिल जाये, तो पर्याय का व्यय होने पर ज्ञेय का भी व्यय होना चाहिए। आत्मानुभूति में ज्ञान की पर्याय में स्वज्ञेय का भी प्रवेश नहीं होता है, वरना एक समय में पर्याय का व्यय होते ही आत्मा का भी नाश हो जाता और भविष्य काल की अनन्तानन्त पर्यायें भी आत्मा के अभाव में आत्मानुभूति से वंचित रह जातीं। अरे भाई! यदि आत्मा ही नहीं रहता, तो आत्मा की पर्याय भी कैसे रहती?

अहो! कैसा अद्भूत स्वरूप है? जब परज्ञेयों को जाननेरूप परिणमित होने वाली ज्ञान की पर्याय में भी परज्ञेयों का प्रवेश नहीं हो सकता, तब शुद्ध

आत्मद्रव्य, जो जाननेरूप परिणमित ही नहीं होता, त्रिकाल ध्रुव सत्ता मात्र है, ऐसे शुद्धात्मा में परज्ञेयों का प्रवेश कैसे हो सकता है? यह शुद्धात्मा ही मैं हूँ, यह शुद्धात्मा ही मैं हूँ, यह शुद्धात्मा ही मैं हूँ, ऐसे तत्त्वविचार के तरंग उछलते हैं, फिर वे तरंग भी शांत होने लगते हैं, तत्त्वविचाररूप विकल्प के तरंग ज्ञान की धारा में परिवर्तित होने लगते हैं। **आत्मानुभूति का जोर छूटने लगता है और आत्मा का जोर दृढ़ होने लगता है।** पर्याय स्वयं को पर्याय मानकर द्रव्य का अनुभव नहीं करती है, बल्कि पर्याय ही द्रव्य में अभेद होकर स्वयं को द्रव्यरूप अनुभव करती है, तब ही निर्विकल्प अनुभूति होती है। जब तक मैं पर्याय और यह द्रव्य ऐसा भेद उत्पन्न होता है, तब तक द्रव्य की अनुभूति नहीं होती है।

जैसे प्रधानमंत्री पद भी है और प्रधानमंत्री व्यक्ति भी है। प्रधानमंत्री पद नित्य है और प्रधानमंत्री व्यक्ति अनित्य है। परन्तु जब प्रधानमंत्री स्वयं को व्यक्ति न मानकर, स्वयं को प्रधानमंत्री मानकर अनुभव करता है, तब वह व्यक्ति एवं पद के भेद को भूलकर स्वयं को प्रधानमंत्रीरूप अनुभव करता है। ऐसे ही आत्मद्रव्य नित्य है और आत्मा की पर्याय अनित्य है। परन्तु जब आत्मा की पर्याय स्वयं को पर्याय न मानकर स्वयं को आत्मा मानकर अनुभव करती है, तब वह पर्याय एवं द्रव्य के भेद से पार होकर स्वयं को द्रव्यस्वरूप अनुभव करती है।

जिन्होंने सत्य को जाना है, उन्होंने सिर्फ कषाय भावों की मंदता से सत्य को जानने के इच्छुक जीवों के सामने ही चैतन्य की पुकार की है। विशुद्धि देखकर ही देशना देना उचित समझा है, क्योंकि गर्म लोहे पर पानी की बूंद गिरने पर वह पानी पलभर में ही जलकर हवा हो जाता है। हे जीव! यदि तुम सचमुच ही इस मानव भव को व्यर्थ के वाद-विवाद में नहीं गंवाना चाहते हो, तो भेदों से पार होकर स्वरूप को प्रधानता दो।

३. चैतन्य चाँद से वीतरागता के फूल

शरीर की क्रिया करने का भाव आना चारित्र सम्बन्धी कमजोरी है, परन्तु शरीर की क्रिया में कर्तृत्वभाव श्रद्धा सम्बन्धी कमजोरी है। चारित्र की तुलना में श्रद्धा सम्बन्धी कमजोरी वाला व्यक्ति अधिक करुणा का पात्र है। लोक में भी दृष्टि की बीमारी वाले को अंधा न कहकर, सूरदास और प्रज्ञाचक्षु जैसे उत्तम शब्दों का प्रयोग करते हैं, पंगु के लिए ऐसे किसी उत्तम शब्दों का प्रयोग नहीं होता है। उसका कारण यही है कि पैर की बीमारी की तुलना में आँख की बीमारी अधिक दयनीय है।

ट्रेन में बिना टिकट यात्रा करने वाले दो यात्रियों में से एक यात्री प्लेटफॉर्म पर उतर कर छुपकर स्टेशन से बाहर निकल गया, दूसरा यात्री टिकट चेकर के सामने सच बोला कि मैं बिना टिकट यात्रा करके आया हूँ। टिकट चेकर ने उसे जुर्माना भरने को कहा। यात्री जुर्माना भरकर श्रद्धा में ऐसा मानने लगा कि सच बोलने से जुर्माना भरना पड़ता है। पहले यात्री से दूसरा यात्री बड़ा अपराधी है। पहले यात्री का अपराध चारित्र से सम्बन्धित है, जबकि दूसरे यात्री का अपराध श्रद्धा से सम्बन्धित है।

कोई व्यक्ति गंगा के पानी में पैर रखकर गंगा की पूजा करता है और कोई व्यक्ति गंगा के पानी में पैर रखकर गंगा के पानी से अपने गंदे पैर को धोता है। दोनों व्यक्तियों की दृष्टि में बहुत बड़ा भेद है। ऐसे ही अज्ञानी और ज्ञानी दोनों ही भोगों को भोगते होने पर भी दोनों की दृष्टि में बहुत बड़ा भेद है।

याद रहे, दूसरों की चारित्र की कमजोरी के कारण स्वयं का संसार परिभ्रमण नहीं होता है, स्वयं की श्रद्धा की कमजोरी के कारण स्वयं का संसार परिभ्रमण होता है। अनादिकाल से स्वयं ने स्वयं से मुंह मोड़कर रखा था, श्रद्धा का सम्यक् परिणमन होने पर स्वयं ही स्वयं का दर्शन करता है। जैसे किसी व्यक्ति के पास सफेद वस्त्र है, तो वह सफेद वस्त्र पहनकर मेरे सामने आया, किसी व्यक्ति के पास काला वस्त्र है, तो वह काला वस्त्र पहनकर मेरे सामने आया। किसी की मजबूरी का लाभ नहीं उठाना चाहिए। प्रत्येक परमात्मा संसार अवस्था में कर्मोदय की मजबूरी के कारण देहरूपी वस्त्र के साथ मेरे सामने आता है। परन्तु उसे वस्त्र के साथ नहीं देखना चाहिए। प्रत्येक आत्मा को परमात्मा के रूप में देखना चाहिए। परन्तु एक-एक आत्मा को परमात्मा के रूप में देखने का अभ्यास नहीं करना चाहिए। जो स्वयं को देहरूपी वस्त्र से न्यारा चैतन्य परमात्मा देखता है, वह प्रत्येक आत्मा को देहरूपी वस्त्र से न्यारा चैतन्य परमात्मा देखता है।

किसी भी आत्मा का किसी भी प्रकार का शिथिलाचार हो, न्याय एवं नीति विरुद्ध हो, फिर भी मुझे उससे क्या लेना-देना? जब अनन्त निगोदिया जीवों को अनन्त सिद्धो के रूप में देखना है, जब आलू, प्याज की जमींकंद में भी आनन्द का कंद सिद्ध परमात्मा ही देखना है, तब कोई व्यक्ति सिद्धांत विपरीत वस्तु स्वरूप का निरूपण करता हो, फिर भी उसे परमात्म दृष्टि से देखे वही सम्यग्दृष्टी है।

जिसे कहीं पहुँचना हो, वह व्यर्थ के कोलाहल में फंसकर समय नहीं गंवाता। जब आपको ऐसा लगे कि इस दुनिया में धर्म के नाम पर ढोंगी बढ़ गये हैं, पाखण्डी बढ़ गये हैं, शिथिलाचारी बढ़ गये हैं, अब तो कुछ करना ही पड़ेगा, तब सच ही आपको कुछ तो करना ही पड़ेगा। आपको ही वह काम करना पड़ेगा। आपको अधिक कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, बस पर्याय दृष्टि छोड़नी पड़ेगी। निज शुद्धात्मा के आश्रय से पर्याय दृष्टि छूटने पर पर्याय में फेरफार करने का भाव ही छूट जाता है।

जैसे स्व-पर को प्रकाशित करने वाली दीपक की ज्योति डोलती है, फिर भी ज्योति की अनित्यता में उष्णता नित्य है, ऐसे ही स्व-पर को प्रकाशित करने वाली आत्मा की ज्ञानज्योति प्रतिसमय जानने-जाननेरूप परिणमित हो रही है, फिर भी ज्ञान के परिणमन में ज्ञान स्वभाव नित्य है, यह ज्ञान स्वभावी भगवान आत्मा ही मैं हूँ।

जैसे किसी व्यक्ति की गाड़ी खराब होने के कारण वह व्यक्ति सड़क के किनारे पर गाड़ी को खोलकर ठीक कर रहा हो, तब गर्म इंजन में उस व्यक्ति का हाथ छू जाने पर उसे वहीं बहती नदी के पानी के प्रवाह को छूने का विकल्प आया। जब वह व्यक्ति बहते हुए पानी को छूता है, तब पानी के विशिष्ट परमाणु की ओर उसका ध्यान नहीं जाता है। वह तो बहते पानी में भी टिककर रहने वाले शीतल स्वभाव को ही दृष्टि में लेता है। ऐसे ही विकल्प का जला अज्ञानी ज्ञान की जानने-जाननेरूप बहने वाली धारा में ज्ञान पर्याय विशेष को दृष्टि में नहीं लेता है। ज्ञान स्वभाव लक्षण से ज्ञायक भाव का आश्रय लेकर विकल्प के दु:ख से मुक्त होता है। जब पर्याय में द्रव्य की स्पर्शना होती है, तब पर्याय एवं द्रव्य के भेद का विकल्प ही समाप्त हो जाता है। याद रहे, पर्याय एवं द्रव्य के भेद समाप्त नहीं हो जाते, बल्कि भेद का विकल्प समाप्त हो जाता है।

जैसे सागर की तरंगो को देखकर हम सागर को जान तो लेते हैं, फिर भी तरंगो को ही सागर का सर्वांग स्वरूप नहीं मान लेते हैं। ऐसे ही पर्याय में ही द्रव्य जानने में आता है। **इसका अर्थ ऐसा नहीं समझना चाहिए कि द्रव्य कहीं अलग है, पर्याय कहीं अलग है और द्रव्य को उठाकर पर्याय में लाकर पर्याय में जानना है।** जैसे मटके में मिट्टी को देखने के लिए मटके में मिट्टी लानी नहीं है, बल्कि मटके की अवस्था में ही मिट्टी का दर्शन करना है। मटके की अवस्था में मटके की रुचि होने के कारण मटका दिखाई देता है और मटके की अवस्था में मिट्टी की रुचि होते ही मटके की अवस्था में मिट्टी दिखाई देती है। पर्याय में द्रव्य का दर्शन होता है। ऐसे ही ज्ञेयों को जानने वाली ज्ञान की विशिष्ट अवस्थाओं की रुचि मिटने पर ज्ञान की अवस्था में ज्ञान ही जानने में आता है।

जैसे गुड़ पुद्गल द्रव्य है, उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि गुण हैं। मीठा, खट्टा, कड़वा, आदि रस गुण की पर्याय है। जब मीठापन चखने में आता है, तब चखने वाला यही कहता है कि मैंने गुड़ को चखा। ऐसे ही आत्मा की ज्ञान की पर्याय में ज्ञान मात्र की अनुभूति होने पर भगवान आत्मा अनुभव में आता है।

भगवान आत्मा को ज्ञान मात्र कहा है, इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि आत्मा में एक मात्र ज्ञान गुण ही है। जैसे दफ्तर के बाहर सूचना लिखी रहती है कि 'नो एडमिशन विदाउट परमीशन' – 'अनुमति के बिना प्रवेश निषेध'। तब ही किसी आदमी को अनुमति के बिना प्रवेश करते हुए देखकर हमने किसी अधिकारी से पूछा कि इस दफ्तर में ऐसा पक्षपात क्यों? अधिकारी ने कहा कि जिस आदमी को आपने अनुमति के बिना प्रवेश करते हुए देखा, वह आदमी इस दफ्तर का ही सदस्य है। ऐसे ही आत्मा को चैतन्य मात्र कहने में आत्मा के अनन्त गुणों का निषेध नहीं समझना चाहिए। 'मात्र' शब्द का प्रयोग तो सिर्फ परद्रव्य एवं परभावों के निषेध के लिए ही किया गया है।

एक ज्ञान गुण में अनन्त गुणों का रूप है। यद्यपि प्रत्येक गुण स्वतंत्र है, फिर भी एक गुण में अन्य गुणों का रूप होता है। जैसे ज्ञान गुण स्वतंत्र है और अस्तित्व गुण स्वतंत्र है। दोनों गुण स्वतंत्र है, परन्तु ज्ञान की अस्ति होने से ज्ञान गुण में अस्तित्व गुण का रूप पाया जाता है।

आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति सहज है, परन्तु अनुभूति से पूर्व निरंतर यही तत्त्वविचार होता है कि चैतन्य, चैतन्य, चैतन्य... मैं स्वयं चैतन्य महल हूँ। चैतन्य महल के पड़ोस में देहरूपी राख की दीवार का निर्माण हुआ है, परन्तु राख की दीवार का निर्माण होने से पहले भी चैतन्य महल था और राख की दीवार के बिखरने के बाद भी चैतन्य महल रहेगा। चैतन्य महल के आंगन में रागादि विकारों का कचरा इकठ्ठा हुआ है, परन्तु चैतन्य महल में नहीं। मैं चैतन्य महल में वास करता हुआ आंगन में पड़े रागादि विकार के कचरे को और पड़ोस में बनी देहरूपी राख की दीवार को ज्ञान की खिड़की से जान रहा हूँ, देख रहा हूँ। अहो! खिड़की सिर्फ देखने के लिए होती है, बाहर जाने के

लिए नहीं। चैतन्य सत्ता देह और रागादि विकल्पों में कहीं मिली नहीं है, ऐसा चैतन्य सत्ता मात्र भगवान आत्मा मैं हूँ।

चैतन्य महल के पड़ोस में बनी राख की दीवार की किसी ने निन्दा की और किसी ने प्रशंसा। जैसे राख की दीवार मेरी पड़ोसन है, ऐसे ही निन्दा और प्रशंसा की वाणी भी मेरी पड़ोसन है। किसी ने निन्दा और प्रशंसा की ऐसे विकल्प भी चैतन्य महल के आंगन में ही हैं। मैं तो त्रिकाल स्वयं सुरक्षित चैतन्य महल हूँ।

जैसे आप अपने घर में बैठते हो, तब घर में होने वाले अंधकार के कारण स्वयं को अंधकार नहीं मान लेते हो और न ही प्रकाश के कारण स्वयं को प्रकाश मान लेते हो। ऐसे ही ज्ञानी मानते हैं कि आत्मा में मोह, राग एवं द्वेष के भाव होते हैं और वीतरागता भी प्रकट होती है। **परन्तु आत्मा मोही, रागी, द्वेषी और वीतरागी नहीं हो जाता, आत्मा तो त्रिकाल चैतन्य मात्र ही है, मैं त्रिकाल चैतन्य मात्र ही हूँ।**

हे साधक! जैसे मल-मूत्र का दमन करने से आँख की बीमारी होती है, ऐसे ही राग और द्वेष का दमन करने से दृष्टि की बीमारी पुष्ट होती है। कंकड़ का त्याग करना नहीं है, जब हीरे को ग्रहण करने के लिए बंद मुट्ठी खोलते हैं, तब मुट्ठी में बंद कंकड़ नीचे गिर जाते हैं। जब चैतन्य हीरे में एकत्व स्थापित होता है, तब श्रद्धान में से रागादि विकल्पों का त्याग हो जाता है।

चारित्र सम्बन्धी कमजोरी से श्रद्धा सम्बन्धी कमजोरी अत्यंत खतरनाक है। कोई कहे कि मैं अभक्ष्य का भक्षण नहीं छोड़ सकता, क्योंकि पूरे जीवनभर मैंने वही भक्षण किया है। उस व्यक्ति की अभक्ष्य भक्षण करने की आदत इतनी खतरनाक नहीं, जितनी यह मान्यता कि भक्षण करने की आदत है, इसलिए नहीं छूट सकती। वह मानता है कि आदत के कारण आदत नहीं छूट सकती है, तो वह यह भी अवश्य मानता होगा कि मिथ्यात्व भी अनादिकाल की पुरानी आदत है। आदत है, इसलिए नहीं छूट सकता, ऐसा मानते रहेंगे, तब तक आदत से मुक्त नहीं हो सकते।

जीवन का पहला अनुभव जीवन की आदत बन जाता है। दूध मनुष्य का पहली खुराक है, इसलिए मनुष्य के जीवन की आदत बन जाता है। मनुष्य ही एक मात्र प्राणी है, जो जीवनभर दूध पीता है, वह भी अपनी माँ का नहीं, दूसरों की माँ का। दूसरों की माँ में भी मनुष्य की माँ का नहीं, जानवर की माँ का।

बच्चे का पहला अनुभव माँ है, बाप नहीं, इसलिए हम देखते हैं कि अधिकांश बच्चे बाप के बिना रह सकते हैं, परन्तु माँ के बिना नहीं। अनुभूति का आदत में रूपांतरण होने का स्वरूप अत्यंत सूक्ष्म है। एक बार आत्मानुभूति होने पर आत्मानुभूति अनन्त काल की आदत बन जाती है, अनन्त काल तक आत्मानुभूति छूट ही नहीं सकती। अपूर्व आत्मानुभूति के फल में प्रकट होने वाले अतीन्द्रिय आनन्द का रस चखने पर भूतकाल के भोगों का सुख आकुलतामय दु:ख ही प्रतीत होता है।

लोक में हम कहते हैं कि आदत छूट सकती है, फिर सिद्धालय में सिद्धों की आत्मानुभूति की आदत क्यों नहीं छूट सकती? अरे भाई! एक आदत को छोड़ने के लिए आश्रय लेने योग्य कोई दूसरा चाहिए। भूतकाल में जब मिथ्यात्व एवं विकल्पों के जाल में फंसा था, तब उन आदतों से छूटने के लिए आश्रय लेने योग्य त्रिकाल शुद्ध चैतन्य स्वरूप था, परन्तु सिद्ध होने के बाद स्वरूप की अनुभूति को छोड़कर आश्रय लेने योग्य विकल्प का अस्तित्व ही नहीं है, अत: सिद्ध परमात्माओं को आत्मानुभूति की आदत छूट नहीं सकती। हे साधक! **सिद्धालय में अनन्त काल तक होने वाली आत्मानुभूति का मूल श्रद्धा का सम्यक् परिणमन जान।**

४. देव–शास्त्र–गुरु की श्रद्धा

समस्त मोह, राग एवं द्वेषरूपी विकारी भावों से रहित अरिहंत एवं सिद्ध परमात्मा ही सच्चे देव हैं। देव की श्रद्धा किसी व्यक्ति की श्रद्धा नहीं है, बल्कि देव तत्त्व की श्रद्धा है। मिथ्यात्व एवं तीन कषाय चौकड़ी के अभावपूर्वक सकल चारित्रवान भावलिंगी मुनि ही सच्चे गुरु है। सम्यग्दृष्टी आत्मज्ञानी की वीतराग वाणी ही शास्त्र है।

निश्चय सम्यग्दर्शन के बिना देव–शास्त्र–गुरु की यथार्थ श्रद्धा नहीं होती है। सच्चे देव–शास्त्र–गुरु–धर्म की यथार्थ श्रद्धा को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं और निश्चय सम्यग्दर्शन के बिना व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं होता है। अंधा आँख वाले को कैसे देख सकेगा? मिथ्यादृष्टी को देव–शास्त्र–गुरु की प्रतीति कहाँ? अज्ञानी उधार ज्ञान जोड़कर देव–शास्त्र–गुरु पर प्रवचन दे सकता है, परन्तु प्रवचन देने मात्र से वह सच्चे देव–शास्त्र–गुरु का यथार्थ श्रद्धानी नहीं हो जाता है।

देव–शास्त्र–गुरु की यथार्थ श्रद्धा प्रकट करने के लिए मिथ्यादृष्टी को सर्वप्रथम यह स्वीकार करना अनिवार्य है कि उसे अभी देव–शास्त्र–गुरु की यथार्थ श्रद्धा नहीं हुई है। मन्दिर जाने मात्र से, शास्त्र पढ़ने मात्र से एवं गुरु के नाम की दुंदुभि बजाने मात्र से देव–शास्त्र–गुरु की श्रद्धा नहीं हो जाती है। यदि उपरोक्त क्रिया करने मात्र से देव–शास्त्र–गुरु की यथार्थ श्रद्धा मान लेंगे, तो व्यवहार सम्यग्दर्शन मानना पड़ेगा। तब फिर मन्दिर जाने वाले, तीर्थयात्रा करने वाले समस्त पुजारियों एवं तीर्थयात्रियों को सम्यग्दृष्टी मानना पड़ेगा। **किसी मित्र से सौ रुपये लेकर यह कहना कि मैंने एक रूपया भी नहीं लिया, यह इतना बड़ा**

झूठ नहीं है, बल्कि सच्चे देव–शास्त्र–गुरु को हाथ जोड़ने मात्र से स्वयं को सच्चे देव–शास्त्र–गुरु का श्रद्धानी मान लेना बहुत बड़ा झूठ है, गृहित मिथ्यात्व है।

ज्ञानी के शरीर को ज्ञानी मान लेना मिथ्यात्व है। देव और गुरु शरीर नहीं हैं, बल्कि शुद्ध अवस्था को प्राप्त आत्मा हैं। जिसे हम ज्ञानी की तस्वीर कहते हैं, सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर वह ज्ञानी की तस्वीर नहीं, बल्कि ज्ञानी के वस्त्र की तस्वीर है। जो वस्त्र उतरकर बिखर चुके हैं, ऐसे वस्त्र की तस्वीर को ही ज्ञानी मान लेना, ज्ञानी की श्रद्धा नहीं है।

कभी कभी अज्ञानी ज्ञानी के उतरे हुए वस्त्र की तस्वीर के सामने ध्यान करने बैठ जाते हैं, परन्तु वह तस्वीर ज्ञानी की अंतरंग दशा को सर्वथा व्यक्त करने में असमर्थ है। ज्ञानी को ध्यान में बैठने से पहले प्रत्येक दिनचर्या के दौरान चैतन्य स्वरूप का चिन्तन चल रहा था, भेदविज्ञान का अभ्यास हो रहा था, उस तस्वीर में वह भेदविज्ञान का अभ्यास एवं चैतन्य तत्त्व का चिन्तन नहीं दिखाई देता है। **अज्ञानी भ्रम से ज्ञानी की ध्यान मुद्रा को देखकर ज्ञानी जैसा ध्यान करना चाहता है, परन्तु चैतन्य तत्त्व के चिन्तन के अभाव में विकल्पों के जाल में ही फंसता है।**

आज तक तुम अनेक तथाकथित गुरुओं के पास गये, क्या तुमने कभी विचार किया कि जो तुम्हें आनन्द प्रकट करने की कला सिखाता है, उसने स्वयं ने विकल्पों के जाल से मुक्त होकर एक समय के लिए भी चैतन्य तत्त्व की अनुभूति का अतीन्द्रिय आनन्द भोगा है? परन्तु तुम स्वयं के दु:ख से ही इतने पीड़ित हो कि तुम्हें किसी दूसरे का दु:ख दिखाई ही नहीं देता है।

एक बार परदेस में कुछ ऐसा हुआ। मैं रास्ते से गुजर रहा था कि मैंने किसी दन्तमंजन बेचने वाले व्यापारी को रास्ते पर दन्तमंजन बेचते हुए देखा। वह दन्तमंजन की बहुत तारीफ कर रहा था। दन्तमंजन खरीदने के लिए बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई थी। वहाँ मैंने देखा कि दन्तमंजन बेचने वाले व्यापारी को एक भी दांत नहीं था। मैंने उस व्यापारी से अकेले में मौका देखकर पूछा कि आप दन्तमंजन की इतनी तारीफ करके सभी लोगों को दन्तमंजन बेच रहे हैं, परन्तु

आप स्वयं तो दन्तमंजन का उपयोग नहीं करते होंगे? उस व्यापारी ने कहा, पुरुष स्वयं साड़ी पहनते नहीं हैं, फिर भी साड़ी बेचते तो हैं न! और एक बात मैं आप से कह दूं कि जो ग्राहक यहाँ आते हैं, वे अपने ही दर्द से इतने पीड़ित होते हैं कि उनमें से किसी के पास इतनी फुर्सत ही कहाँ है कि यह देखने का कष्ट करे कि मुझे दांत है या नहीं? बस ऐसे ही आज तक तुमने उन्हीं तथाकथित गुरुओं से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय पूछा है, जिन्हें स्वयं को ही शुद्धात्मा का कोई अनुभव नहीं है।

सद्गुरु तो बहाना है। सच तो यह है कि शिष्य ने सच्चे हृदय से झुकना जाना ही नहीं था, उसे झुकना सिखाया कि एक चैतन्य तत्त्व के आश्रय से सारे जगत के सामने झुकने की पात्रता प्रकट हो सके। हे साधक! तूने आग्रह छोड़ा तो तुझे गुरु मिले, अब गुरु को भी छोड़, तो तुझे परमात्मा मिलेंगे। **याद रहे, जब पर परमात्मा को भी छोड़ने की तैयारी होती है, तब निज परमात्मा के दर्शन होते हैं, सम्यग्दर्शन होता है।** निज परमात्मा को छोड़कर पर परमात्मा की ओर दौड़ने वाली परिणति को व्यभिचारिणी कहा है।

जैसे सूरज की तस्वीर से जलता दीपक अधिक मूल्यवान है। प्रज्वलित दीपक ही सूरज की तस्वीर को दिखाता है। ऐसे ही देव और गुरु की प्रतिमा या तस्वीर से त्रिकाल प्रज्वलित ज्ञान दीपक अधिक मूल्यवान है। प्रज्वलित ज्ञान दीपक ही देव और गुरु की प्रतिमा या तस्वीर को जानता है।

अज्ञानी स्वयं के साथ ही मायाचार करता है, वह अशुभ कार्य करने के लिए सद्गुरु के पास आज्ञा लेने नहीं जाता, परन्तु शुभ कार्य करने के लिए गुरु के समीप आज्ञा लेने जाता है।

सद्गुरु के विरह की वेदना वे ही समझ सकते हैं, जिनका ध्येय एक मात्र स्वरूप की संवेदना है। सद्गुरु की मंगलवाणी सुनकर जब आपको अंतरंग में ऐसी जिज्ञासा जागे कि कैसा होगा आत्मानुभव? काश! मैं सद्गुरु के अंदर प्रवेश करके भी उनकी अंतरंग दशा को समझ सकता!

पर परमात्मा की भक्ति से कषाय मंद होते हैं, जबकि निज परमात्मा की भक्ति से मिथ्यात्व मंद होता है। आदिनाथ भगवान की भक्ति से कषाय की मंदता तो अनेक बार हुई, परन्तु अनादिनाथ भगवान के तत्त्वविचार से मिथ्यात्व मंद नहीं हुआ। इसका अर्थ यह नहीं कि आदिनाथ भगवान की भक्ति बंद कर दी जाये। खास बात तो यह है कि आदिनाथ भगवान की भक्ति का शुभराग उत्पन्न होने पर भेदविज्ञान का अभ्यास बना रहे। जैसे रास्ते पर निकलने वाली गाड़ियाँ मेरे घर में प्रवेश नहीं करती हैं, ऐसे ही पर्याय में उत्पन्न होने वाले रागादि भाव चैतन्य के महल में प्रवेश नहीं करते हैं, यह चैतन्य तत्त्व ही मैं हूँ। ऐसा विचार आने पर आदिनाथ भगवान से ध्यान हटकर अनादिनाथ की ओर ध्यान केन्द्रित होगा। **आदिनाथ भगवान की भक्ति का ही नहीं, किसी भी प्रकार के विकल्प से भेदविज्ञान एवं तत्त्वविचार करने पर अनादिनाथ चैतन्य तत्त्व पर ध्यान केन्द्रित होगा।**

वीतरागी भगवान को नारियल चढ़ाना और रागी देवता को बकरा चढ़ाने में चारित्र की दृष्टि से देखें तो दोनों पाप में बड़ा भेद है। परन्तु दोनों ही भगत क्रियाकांड से धर्म मानते होने से दोनों ही मिथ्यादृष्टी मिथ्या मान्यता के फल में अनन्त संसार में परिभ्रमण करते हैं। **नारियल चढ़ाने वाला स्वर्ग होकर निगोद में और बकरा चढ़ाने वाला नरक होकर निगोद की यात्रा करता है।** मंदिर मस्जिद भेद कराये, मेल कराये मधुशाला। मंदिर एवं मस्जिद में बाह्य क्रियाएं अलग-अलग होती हैं। दोनों जीवों के भावों में भेद हैं। एक का भाव शुभ है और दूसरे का भाव अशुभ है। फिर भी शुभ एवं अशुभ भावों में एकत्व करने के फल में दोनों ही जीव निगोद की मधुशाला में मिल जाते हैं।

वहीं एक सम्यग्दृष्टी चिड़िया को सात तत्त्वों के नाम भी नहीं आते हों, चौबीस तीर्थंकरो के नाम भी न आते हों, फिर भी आत्मा और देह के बीच सहज भेदविज्ञान के फल में निगोद की मधुशाला से अनन्त काल के लिए विदाई लेकर अनन्त सिद्धों के मेले में निवास करने वाली है।

५. प्रतीति एवं परिणति

श्रद्धा गुण के परिणमन को प्रतीति एवं चारित्र गुण के परिणमन को परिणति कहते हैं। श्रद्धा गुण के अशुद्ध परिणमन को मिथ्या प्रतीति अर्थात् मिथ्यात्व एवं शुद्ध परिणमन को सम्यक् प्रतीति अर्थात् सम्यक्त्व कहते हैं। वहीं चारित्र गुण के अशुद्ध परिणमन को अशुद्ध परिणति अर्थात् राग-द्वेष (कषाय) कहते हैं और शुद्ध परिणमन को शुद्ध परिणति अर्थात् वीतरागता कहते हैं।

चारित्र गुण की तरह श्रद्धा गुण का शुद्ध परिणमन क्रमशः विकसित नहीं होता है। इसलिए श्रद्धा आंशिक नहीं होती, अपूर्ण नहीं होती।

जैसे आप मुंबई में करोड़पति हो और कभी सम्मेद शिखर जी तीर्थ की तीर्थयात्रा के लिए चले गये। वहाँ यात्रा के दौरान आपका सब सामान लुट गया। वहाँ आपने किसी धर्मशाला में जाकर पाँच हजार रुपये उधार मांगे, परन्तु धर्मशाला के अधिकारी ने कहा कि आपके जैसे अनेक लोग यहाँ लुट जाने के बाद रुपये मांगने आते रहते हैं, रुपये लेकर जाते हैं और कोई रुपये वापिस नहीं लौटाता। फिर भी आप चिंता न करे, हम आपको दो हजार रुपये देंगे। तब आप कहते हैं, कृपा करके पाँच हजार दीजिये, चार हजार दीजिये। जब आप उस धर्मशाला के अधिकारी के सामने पाँच हजार और चार हजार रुपये के लिए भिखारी की तरह हाथ फैलाते हैं, तब आप अपने को मुंबई में मैं करोड़पति ही हूँ, ऐसा मानते हैं।

ऐसे ही ज्ञानी का बाह्य आचरण अज्ञानी जैसा होने पर भी उन्हें मैं चैतन्य तत्त्व ही हूँ, यह प्रतीति सदैव बनी रहती है। बाह्य में भोगों को भोगने के काल

में भी स्वयं को भोगी न मानकर भगवान आत्मा ही मानते हैं। भोगों को भोगना चारित्र सम्बन्धी कमजोरी है और स्वयं को भगवान मानना श्रद्धा का बल है, आत्मा का पुरुषार्थ है।

जैसे आपकी इमारत के परिसर में दस बच्चे खेल रहे हैं। आपने आवाज सुनी कि खेलते-खेलते किसी एक बच्चे का सिर फूट गया। आप अत्यंत चिंतित होते हुए वहाँ जाकर देखते हैं कि आपका बेटा सुरक्षित है। अभी आपने जिस बेटे का सिर फूट गया है, उस बेटे को देखा भी नहीं है, फिर भी आप बहुत बड़ी चिंता से तत्क्षण मुक्त हो जाते हैं। भले ही आपका बेटा सुरक्षित है, फिर भी पराये बेटे को अस्पताल ले जाने का भाव तो आपको भी आता ही है।

ऐसे ही सम्यग्दृष्टी ज्ञानी धर्मात्मा निजात्मा के अतिरिक्त किन्हीं भी परजीवों को अपना नहीं मानते हैं, फिर भी उन्हें भी अपनी भूमिकानुसार परजीवों के प्रति करुणा का भाव आये बिना नहीं रहता है।

जैसे गुब्बारे का रंग कैसा है? यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि गुब्बारे में क्या भरा है? यह महत्त्वपूर्ण है। यदि सादी हवा भरी होगी, तो सफेद गुब्बारा भी ऊपर नहीं जायेगा, परन्तु यदि किसी विशिष्ट गैस वाली हवा भरी होगी, तो काला गुब्बारा भी ऊपर जायेगा। ऐसे ही आत्मा किस रंग के देह में रहता है, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है, बल्कि देहदेवल में विराजमान भगवान आत्मा सम्यक्त्व रत्नत्रय सुशोभित है या नहीं, यह महत्त्वपूर्ण है। यदि आत्मा मिथ्यात्व भाव से पीड़ित होगा, तो लोकाग्र शिखर पर अनन्त काल के लिए विराजमान नहीं होगा और यदि सम्यक्त्व मंडित होगा, तो ही सिद्धत्व को प्राप्त हो सकेगा।

हे साधक! आत्मा की बीमारी देह के क्रियाकांड से कैसे दूर होगी? जैसे फोड़े पर सुंदर फूल रखने से फोड़ा मिट नहीं जाता, बल्कि ढंक जाता है, फोड़े को मिटाने के लिए फोड़े पर मरहम लगाकर फोड़े का इलाज करना चाहिए, ऐसे ही मिथ्यात्व के फोड़े पर सुंदर क्रियाकांड के फूलों को रखने से मिथ्यात्व मिट नहीं जाता, **मिथ्यात्व को मिटाने के लिए सद्गुरु की देशना सुनकर तत्त्वविचार करके चैतन्य तत्त्व का आश्रय लेकर स्वस्थ होना चाहिए।**

जैसे कोई व्यक्ति साइकिल लेकर जा रहा हो और वह साइकिल को रोकना चाहे, तो उसे सर्वप्रथम पैडल लगाना बंद करना चाहिये और बाद में ब्रेक लगाना चाहिये। पैडल लगाना बंद करने से पहले ही ब्रेक लगाने पर वह निश्चित रूप से नीचे गिरेगा। ऐसे ही अज्ञानी संसार की साइकिल अर्थात् संसार परिभ्रमण रोकना चाहे, तो उसे सर्वप्रथम मिथ्यात्व दूर करने का पुरुषार्थ करना चाहिए। **मिथ्यात्व दूर हुए बिना मात्र देह के क्रियाकांड से विकल्पों की खाई में ही गिरना होगा और भावमरण ही करना होगा।** पैडल लगाना बंद करना अर्थात् मिथ्यात्व से मुक्त होना और ब्रेक लगाना अर्थात् गृहस्थावस्था छोड़कर मुनि होना। मिथ्यात्व छूटने पर मुनिधर्म सहज ही प्रकट होता है। ज्ञानी को मुनिधर्म अंगीकार करने का राग का विकल्प आता है, उस राग के विकल्प को भी वे भयंकर आग समान एवं काले नाग समान मानते हैं। मुनिधर्म पालन करने के विकल्प को भी विष समान मानते हैं और स्वयं को चैतन्य अमृत मानकर अमृत का रसपान करते हैं। **यद्यपि श्रद्धा गुण के सम्यक् परिणमन के पश्चात् भी चारित्र सम्बन्धी कमजोरी एवं पूर्वकृत कर्मोदय के निमित्त से रागादि भाव आत्मा में उत्पन्न होते हैं, परन्तु स्वरूप के आश्रय से रागादि भावों की मलिनता भी निकट काल में अवश्य दूर होगी।**

जैसे सूर्य के ताप से पत्थर गर्म होता है, परन्तु सूर्यास्त होने के पश्चात् सूर्य की किरणें उस पत्थर पर नहीं पड़ती हैं, फिर भी पत्थर गर्म है और थोडी देर रहेगा। यहाँ समझने योग्य बात यह है कि सूर्यास्त के पश्चात् जो पत्थर गर्म होता है, वह गर्म होने के लिए गर्म नहीं है, बल्कि प्रतिसमय ठंडा होने के लिए परिणमित हो रहा है। ऐसे ही श्रद्धा सम्यक् होने पर भी ज्ञानी को पापादि प्रवृत्ति करते देखते हैं, परन्तु चारित्र सम्बन्धी कमजोरी भी निकटकाल में अवश्य दूर होगी।

यदि घर पर कोई अनजान व्यक्ति सौ रुपये मांगने आता है, तो पूछते हैं कि तू कौन है? कहाँ से आया है? परन्तु बेटे को करोड़ों रुपये की सम्पत्ति दे देते हैं। कोई यह नहीं पूछता है कि किस गति में से मरकर यहाँ आया है? बस, यही अपनापन होने का परिणाम है। जहाँ श्रद्धा है, वहाँ समर्पण है। ज्ञानी

को आत्मा में अपनापन है। आत्मा का उपयोग ही आत्मा का वैभव है, अत: ज्ञानी उपयोग को अनन्त काल के लिए आत्मा में स्थिर करते हैं। उपयोग का उपयोग में स्थिर हो जाना सर्वस्व समर्पण है।

अनादि काल से आजतक अज्ञानी पी-पी में अटका है, इसीलिए ही पामर परमात्मा परमपद की प्राप्ति से वंचित रहा। कोई पीजा-पास्ता में, तो कोई पानी-पुरी में, कोई पालक-पनीर में, तो कोई पूरण-पोली में, कोई पुलाव-पावभाजी में, तो कोई पनीर-पकोड़ा में, कोई पति-पत्नी में, तो कोई पिता-पुत्र में! ऐसा एक भी समय नहीं आया, जब वह पुण्य-पाप के विकल्पों में न अटका हो, वीतरागी एवं सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म पाकर भी यह अज्ञानी पर-परमात्मा में ही अटका रहा। ज्ञानी कहते हैं कि तुझे पंचमकाल में भी पंचम पारिणामिक भाव के आश्रय से प्रतीति की निर्मलता के बल पर परिणति की शुद्धि में अवश्य वृद्धि होगी और तू परमपद पायेगा।

श्रद्धा एवं चारित्र का स्वरूप भिन्न ही नहीं, बल्कि विपरीत भी हो सकता है। दोनों गुणों के स्वतंत्र स्वरूप को इस दृष्टांत के माध्यम से समझ सकते हैं। एक मित्र ने मजाक करते हुए दूसरे मित्र की आँख के निकट जाकर ऐसे हाथ घुमाया, जैसे चांटा मारना चाहता हो। पहला मित्र आँख नहीं फोड़ेगा, ऐसी श्रद्धा होने पर भी दूसरा मित्र अपनी आँख को बन्द कर लेता है, यह चारित्र सम्बन्धी कमजोरी जानना। **ऐसे ही सम्यग्दृष्टी को शुद्धात्मा की यथार्थ श्रद्धा होने पर भी भोजन करते हैं, बीमार होने पर अस्पताल जाते हैं, दवाई लेते हैं, फिर भी उन्हें चैतन्य स्वरूप की जागृति निरंतर बनी रहती है।**

किसी फकीर के पास लकड़ी का एक भिक्षापात्र ही था। किसी महारानी ने उनसे पूछा कि मैं आपको सोने का भिक्षापात्र भेंट देना चाहती हूँ। क्या आप स्वीकार करेंगे? फकीर ने कहा कि लकड़ी और सोने में भेद ही क्या है? मैं अवश्य स्वीकार करूंगा। फकीर ने कहा आप लकड़ी के भिक्षापात्र को फेंक मत देना, यदि इस सोने के भिक्षापात्र को कोई चुराकर ले जाये, तब फिर इस लकड़ी के भिक्षापात्र की जरूरत पड़ेगी। ऐसा कहकर फकीर सोने का भिक्षापात्र लेकर वन में किसी गुफा में चला गया। उस दिन एक चोर ने भी उस फकीर

का पीछा किया। जब फकीर को संदेह हुआ कि गुफा के बाहर चोर भिक्षापात्र की चोरी करने का इंतजार कर रहा है, तब फकीर ने भिक्षापात्र अपनी ओर से ही गुफा के बाहर रख दिया।

यदि फकीर की अनुमति के बिना चोर भिक्षापात्र को ले जाता, तो चोरी होती परन्तु फकीर ने अपनी ओर से भिक्षापात्र देकर चोरी की घटना को दान में रूपांतरित कर दिया। **समझदार पुरुषों की यही विशेषता होती है कि वे हीन कार्य को भी बेहतर रूप दे देते हैं।** चोर ने फकीर की इस उदारता को देखकर बोध मांगा। फकीर ने सिर्फ इतना ही कहा कि यदि चोरी भी करो, तो आत्मजागृतिपूर्वक करो।

थोड़े दिन बाद उस चोर ने फकीर से कहा कि मैं ऐसा मानता था कि दुनिया सोती है, इसलिए मैं चोरी करता हूँ। परन्तु सत्य तो यह था कि मैं सो रहा था, इसलिए मैं चोरी करता था। जब से जागा हूँ, चोरी कर ही नहीं सकता हूँ।

यदि अविरत सम्यग्दृष्टी चोरी करते भी हैं, तो भी चोरी करते नहीं है, बल्कि चोरी को जानते हैं, वे पाप करते हुए भी पाप को जानते हैं, भोग भोगते हुए भी भोगों को जानते हैं। यही तो कारण है कि चौथे गुणस्थान में आत्मजागृति प्रकट होने पर ऐसी दशा प्रकट होती है कि सहज ही पाप से और भोग से मुक्त हो जाते हैं। आत्मजागृति के बल पर पंचम गुणस्थान में अणुव्रत एवं छठवें गुणस्थान में महाव्रत का पालन सहज ही होता है।

६. ज्योत से ज्योत जले

सम्यग्दृष्टी को ही भावश्रुत ज्ञान होता है, अत: सम्यग्दृष्टी के बोध को ही द्रव्यश्रुत कहते हैं, मिथ्यादृष्टी की वाणी शास्त्र नहीं होती, क्योंकि मिथ्यादृष्टी अपनी वाणी में अपनी स्वतंत्र मिथ्या मान्यता को मिलाता हुआ वस्तु स्वरूप का निरूपण करता है, यही कारण है कि सम्यग्दृष्टी के उपदेश को ही देशना कहते हैं और सम्यग्दृष्टी का उपदेश ही अन्य जीवों को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में निमित्त कारण कहा जाता है।

प्रज्वलित ज्ञान दीपक से अप्रज्वलित ज्ञान दीपक भी प्रज्वलित होते हैं। जैसे कोई पुरुष किसी गुफा में अपने हाथ में अप्रज्वलित दीपक लेकर जाये और कुछ काल पश्चात् प्रज्वलित दीपक लेकर आये, तब यह निश्चित हो जाता है कि गुफा में पूर्व से ही कोई प्रज्वलित दीपक है, जिसकी संगति में आकर यह अप्रज्वलित दीपक भी प्रज्वलित हुआ है। ऐसे ही अनन्त दीपकों की परम्परा चलती है। मिट्टी से मिट्टी की परम्परा नहीं चलती। जड़ से जड़ की परम्परा नहीं चलती। जीवंत से जीवंत की परम्परा चलती है। कुल परम्परा से ज्ञानियों की परम्परा नहीं चलती, देह तो मिट्टी है, जड़ है।

यह बात अवश्य याद रहे कि ज्योत से ज्योत तभी जलती है, जब प्रज्वलित दीपक और अप्रज्वलित दीपक के बीच दूरी किंचित् भी न रहे। प्रज्वलित दीपक के नीचे बैठने वाले को अंधेरा ही मिलता है। अत: स्वयं को हीन न मानकर परमात्म स्वरूप अनुभव करें। इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि प्रज्वलित दीपक के नीचे न बैठें जिससे अंधेरे से बच जायें और अहंकार के कारण प्रज्वलित दीपक के ऊपर इतने भी न चले जायें कि दीपक के धुएँ में खो ही जायें।

मिथ्यादृष्टी का उपदेश सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का निमित्त कारण भी नहीं बन सकता। हाँ, मिथ्यादृष्टी के मुख से निकली वाणी को सुनकर भूतकाल में सुनी हुई ज्ञानी की वाणी स्मरण में आ जाये, तो स्मरण में आने वाली ज्ञानी की वाणी सम्यग्दर्शन में निमित्त कही जाती है, परन्तु मिथ्यादृष्टी की वाणी नहीं।

ज्ञानी के लिए सबसे बड़ी कठिनता यही है कि वे आत्मानुभूति को वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सकते हैं। अंतरंग में चैतन्य तत्त्व का रसास्वादन होने पर भी अनुभूति वाणी नहीं बन सकती। अनुभव आत्मा का लक्षण है, आत्मा का लक्षण वाणी में कैसे आ सकता है? **जब जड़ पुद्गल का अनुभव भी वाणी द्वारा व्यक्त नहीं हो सकता, तब भगवान आत्मा के अनुभव का तो कहना ही क्या?**

जब आत्मा के उपवन में वीतरागता के फूल खिलते हैं, तब पूर्वकृत कर्मो दय से रागादि भावों के कांटे भी निकल आते हैं। जैसे लोक में कांटे से कांटे को निकालते हैं, ऐसे ही ज्ञानी के शुभराग से निकला हुआ बोधामृत अज्ञानी को मिथ्यात्वरूपी कांटे से मुक्त करने के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। ज्ञानी की वाणी को शास्त्र के प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है, ज्ञानी की वाणी स्वयं शास्त्र है।

ज्ञानी प्रवचन देते हैं, ज्ञानी को वाणी एवं वाणी के विकल्प में कर्तृत्वबुद्धि नहीं होती, इसलिए ज्ञानी की वाणी को अपूर्व वाणी कहते हैं। जैसे राह पर किसी का मृतदेह पड़ा हो और कोई जिन्दा आदमी उस मरे हुए आदमी का परिचय देता है। ऐसे ही ज्ञानी को प्रवचन देने की देह की क्रिया के काल में भी अंतरंग में जानने की क्रिया ही होती रहती है। ज्ञानी मानते हैं कि मैं आत्मा का नहीं, बल्कि राख की दीवाररूपी मुर्दा मेरे बारे में परिचय दे रहा है। लोक में तो जिन्दा पुरुष मुर्दे का परिचय देता है, परन्तु लोकोत्तर मार्ग में तो मुर्दा देह त्रिकाल जागृत चैतन्य तत्त्व का परिचय देता है।

पाप दो प्रकार के होते हैं। एक श्रद्धा सम्बन्धित और दूसरा चारित्र सम्बन्धित। चारित्र सम्बन्धित पाप से श्रद्धा सम्बन्धित पाप अनन्त गुना अधिक होता है। क्योंकि श्रद्धा सम्बन्धित पाप से मुक्त होने पर जीव का अनन्त संसार

परिभ्रमण नियम से रुक जाता है। किंचित् न्यून अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल में जीव देहातीत दशा को उपलब्ध होता है।

जैसे रास्ते से गुजरते हुए किसी कसाई को पशु की हत्या करके मांस बेचता हुआ देखकर आपको उस कसाई के प्रति द्वेष हुआ। आपकी श्रद्धा में यह बात ऐसी दृढ़ हो गई कि वह कसाई नरक में ही जायेगा। आपके गुजरने के बाद उस कसाई को किसी सद्गुरु का योग प्राप्त हुआ और उसके जीवन में क्रांति घटित हुई। उसने मांस बेचना और खाना छोड़कर शुद्ध सात्त्विक जीवन जीना प्रारम्भ किया।

वह सात्त्विक जीवन जीने वाला पुरुष मरकर विदेहक्षेत्र में जन्म लेकर गर्भकाल सहित नौ वर्ष में केवली हुआ। करीब दस बरस पहले जो कसाई था, वही जीव आज चार घातियाँ कर्मों का नाश करके अरिहंत भगवान हुआ। परन्तु दस साल के पश्चात् आप मन्दिर में बैठकर णमोकार मंत्र का जाप कर रहे हो, तब ही दस साल पुराना कसाई आपके स्मरण में आया और पुनः द्वेष हुआ। जिस कसाई के प्रति आप द्वेष करते हो, उसी जीव को णमोकार मंत्र में अरिहंत भगवान के रूप में नमस्कार करते हो।

हे साधक! उचित यही होगा कि तू किसी भी जीव के सम्बन्ध में चित्र-विचित्र धारणा करके उसे अपनी श्रद्धा में पापी न देख। तू नहीं जानता है कि जो चींटी आज तेरे पैर के नीचे है, वह निकट काल में सिद्ध शिला के ऊपर होगी। अरे! चींटी ही नहीं, भले ही आज तेरा पैर चींटी के नीचे है, परन्तु निकट काल में तू सिद्ध शिला के ऊपर होगा। चींटी या चींटी पर पैर रखने वाला तू सिद्धशिला के ऊपर होगा या नहीं, मैं नहीं जानता, परन्तु चींटी को और तुझे परमात्म दृष्टि से देखने पर मैं तो अवश्य सिद्धशिला पर विराजमान होने जा रहा हूँ। अरे भाई! **जीव सिद्धशिला पर अनन्त काल के लिए विराजमान बाद में होता है, उससे पहले तो यहीं 'मैं स्वयं सिद्ध हूँ', ऐसी अनुभूति को उपलब्ध होता है।**

७. सम्यग्दृष्टी के वस्त्र

दो अविरत सम्यग्दृष्टी के वस्त्र एक समान नहीं दिखाई देंगे। **अत: याद रहे, वस्त्र को चिन्ह मानकर ज्ञानी एवं अज्ञानी की पहिचान नहीं करनी चाहिए।** ज्ञानी होने के लिए ज्ञानी की बाहर से नकल नहीं करनी चाहिए। धन चुराने वाला छोटा चोर है, परन्तु ज्ञानी के बाहरी वेश को धारण करके स्वयं को ज्ञानी मानने वाला और बताने वाला बड़ा चोर है।

जैसे पुरुष के वस्त्र पहन लेने से कोई स्त्री पुरुष नहीं हो जाती, ऐसे ही ज्ञानियों का बाहरी चारित्र अंगीकार कर लेने से कोई ज्ञानी नहीं हो जाता। जब देहरूपी वस्त्र के साथ ही सम्यग्दर्शन का सम्बन्ध नहीं है, तब देहरूपी राख की दीवार पर ढके धागे के वस्त्र का तो कहना ही क्या? कुछ अज्ञानी ऐसा मानकर मिथ्यात्व का पोषण करते हैं कि सफेद वस्त्र पहनने वाले ज्ञानी होते हैं एवं सफेद के अतिरिक्त अन्य रंग के वस्त्र पहनने वाले अज्ञानी होते हैं। **ज्ञानी की दृष्टि अरूपी चैतन्य स्वरूपी भगवान आत्मा पर होती है, पुद्गल के रंग पर नहीं। ज्ञानी जब राग के रंग का एवं देह के रूप का भी ध्यान नहीं करते, तब वस्त्र के रंग-रूप का तो कहना ही क्या?**

सम्यग्दृष्टी मानते हैं कि चमड़ी से बने वस्त्र पर धागे से बना वस्त्र ओढ़ा जा रहा है। रात्रि में सोते समय चद्दर ओढ़ते समय भी यह जागृति रहती है कि मुर्दा स्वयं अपने हाथों से कफन ओढ़ रहा है और मैं चैतन्य परमात्मा उस विधि को अत्यंत दूर से जान रहा हूँ।

सफेद रंग की विशेष महत्ता यह है कि प्रत्येक रंगीन वस्त्र पर रंग लगने से पहले वह सफेद होता है। रंग मिटने के बाद भी वह सफेद हो जाता है। सफेदी शुद्धता का प्रतीक है। आत्मा भी त्रिकाल शुद्ध है, पर्याय में रागादि विकारी भावों के रंग लगते रहते हैं और मिटते रहते हैं, फिर भी द्रव्य की शुद्धता पर्याय की मलिनता से अस्पर्शी ही रहती है।

जब महावीर भगवान को शेर की अवस्था में सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ, तब कहाँ सफेद वस्त्र पहने थे? अरे! वस्त्र ही नहीं पहने थे। ऐसा जानकर शेर की तरह नग्न हो जाने को सम्यग्दर्शन का कारण मत मान लेना। आशय यह है कि मनुष्य गति में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अनुसार अपनी भूमिका के योग्य वस्त्र अवश्य पहनने चाहिए।

देखो! **चतुर्थ गुणस्थानवर्ती समस्त अविरत सम्यग्दृष्टियों के वेश एक समान नहीं होते हैं क्योंकि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति आत्मा को होती है, वस्त्र को नहीं।** परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी, पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी, श्री बनारसीदासजी, श्री टोडरमलजी, श्री दौलतरामजी, बहन श्री चंपाबेन, श्री निहालचंदजी सौगानी आदि अनेक ज्ञानियों के बाह्य वेश अलग-अलग होने पर भी चैतन्य तत्त्व की श्रद्धा में कोई भेद नहीं था। अत: सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के चाहक जीवों को वस्त्र परिवर्तन के विकल्पों में उलझने की बजाय तत्त्वविचार से भेदविज्ञान पर ध्यान देना चाहिए। क्योंकि बाह्य वेश तो क्या, देहरूपी वस्त्र भी एक समय में बदल जाता है और अनन्त भवों में अनन्त बार अनन्त देहरूपी वस्त्र छूट गये, फिर भी आत्महित तो हुआ ही नहीं। अरे भाई! वस्त्ररूपी केंचुली छूट जाने से मिथ्यात्वरूपी जहर थोड़े ही छूट जाता है?

वस्त्र के कारण ज्ञानी या अज्ञानी की पहचान नहीं करनी चाहिए। सादे सफेद कपड़े पहनने वाले या कपड़े न पहनने वाले को देखकर ही उनसे आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने नहीं जाना चाहिए। जैसे रास्ते पर आपकी गाड़ी खराब हो जाये, तो आप सादे सफेद कपड़े वाले को या कपड़े न पहनने वाले को गाड़ी ठीक करने के लिए नहीं कहते हैं, बल्कि गाड़ी के अनुभवी विशेषज्ञ की सहायता चाहते हैं। ऐसे ही **मोक्षमार्ग पर यात्रा करने के लिए मोक्षमार्ग पर चलने**

वाले आत्मानुभवी ज्ञानियों से ही आत्मा के मिथ्यात्व रोग का ईलाज कराना चाहिए।

ज्ञानी की अंतरंग दशा सहज होने से वे बाह्य परिस्थिति को भी सहजरूप से जानते हैं। ज्ञानियों को आत्मस्थिरता के कारण दाढ़ी बढ़ने की ओर ध्यान ही नहीं जाता था। परन्तु अज्ञानी बाहर में ज्ञानी की नकल करता हुआ दाढ़ी बढ़ाता है और नाई की महंगी दुकान पर जाकर दाढ़ी ठीक करवाता है। वे पहले दाढ़ी बनवाते थे परन्तु अब नहीं बनवाते। परन्तु चेहरे के प्रति मोह कुछ भी कम नहीं हुआ। जब पहले दाढ़ी बनाते थे, तब उस्तरा घुमाते थे, अब दाढ़ी नहीं बनाते है, इसलिए अब उस्तरा नहीं घुमाते है, परन्तु उस्तरे की जगह कंघी घुमाते हैं। हे साधक! देह का अपनापन संयोग पलटने से नहीं छूट जाता है।

जब लोक में भी मार्ग पर यात्रा करने के लिए सफेद वस्त्र और काले वस्त्र का भेद नहीं होता है, तब अलौकिक मार्ग में वस्त्र के रंग से क्या प्रयोजन है? बाल बढ़ाने और मुंडन करने का क्या प्रयोजन है? ज्ञानी का भूमिकानुसार जैसा देश वैसा वेश होता है, परन्तु श्रद्धान में एकत्व तो एक मात्र चैतन्य तत्त्व में ही होता है।

आत्मा में सकल चारित्ररूप वीतराग परिणति प्रकट होती है, तब सहज ही वस्त्र छूट जाता है। आत्मा की शुद्ध परिणति में विकास होने पर ज्ञानी भूतकाल की यात्रा करते हैं। जैसे किसी मनुष्य को बयालीस वर्ष की आयु में सम्यग्दर्शन प्रकट हुआ। सम्यग्दर्शन प्रकट होने के बाद वे भूतकाल में बचपन में देह से काम-भोग नहीं भोगते थे, अब वीतराग परिणति की शुद्धता में वृद्धि होने पर ब्रह्मचर्य का पालन सहज ही करते हैं। भूतकाल में झूले में वस्त्र नहीं पहनते थे, अब वीतराग परिणति की शुद्धता में वृद्धि होने पर नग्न होकर मुनिदीक्षा का पालन करते हुए छठवें-सातवे गुणस्थान में झूलते हैं। जैसे बच्चा जन्म लेने से पहले माँ की कोख में था, ऐसे ही वनविहारी मुनि गुफा में आत्मध्यान में स्थित होते हैं। जैसे गर्भ में आने से पहले बच्चा यहाँ नहीं था, परन्तु भूतकाल में निगोद में तो था। ऐसे ही मुनिराज केवलज्ञान पाकर यहाँ नहीं रहते हैं, वे देहरूपी वस्त्र को भी छोड़कर सिद्धालय में निवास करते हैं।

८. निर्लेप सम्यग्दृष्टी

जैसे नगरनारी का प्रेम बाह्य में दिखावे मात्र के लिए होता है, ऐसे ही सम्यग्दृष्टी का प्रेम मात्र बाह्य में दिखावा ही होता है। बाह्य दृष्टि से देखने पर ज्ञानी इस पृथ्वी पर वास करते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु वास्तव में वे चैतन्य लोक में वास करते हैं।

जैसे चन्दन के पेड़ पर सर्प लिपटकर रहते हैं, फिर भी सर्प का विष चन्दन के पेड़ में मिल नहीं जाता है, ऐसे ही चन्दन की पौद्गलिक शीतलता तो अत्यंत दूर, अहो! स्वरूप के शांत अमृत का रसपान करने वाले सम्यग्दृष्टी स्वयं की पुरुषार्थ की कमजोरी एवं पूर्वकृत उदय के कारण मिथ्यादृष्टियों के साथ रहकर भी मिथ्यात्वरूपी जहर नहीं पीते हैं।

एक आदमी अपने मित्र से कहता है कि मुझे कुछ रुपये की आवश्यकता है, क्या तुम मुझे कुछ दिन के लिए दे सकते हो? मित्र ने कहा कि तुम तो कहते थे कि तुम्हारे सामने बड़े-बड़े करोड़पति भी कतार में खड़े रहते हैं। तुम इतने बड़े आदमी होकर मुझसे रुपये मांगने क्यों आये हो? उस मित्र ने कहा कि मैं बैंक में कैशियर के रूप में काम करता हूँ और मेरे सामने करोड़पति भी कतार में खड़े रहते हैं। वास्तव में वह कैशियर करोड़ों रुपये की गिनती करता होने पर भी स्वयं को उन रुपयों का स्वामी नहीं मानता है। भले ही वह स्वयं को उन रुपयों का स्वामी न मानता हो, फिर भी रुपये की गिनती ठीक तरह से करता है और लेन-देन करता है।

ऐसे ही ज्ञानी गृहस्थावस्था में रहकर भी किसी भी परपदार्थ में एकत्व नहीं करते हैं। वे भूमिकानुसार अपना व्यवहार निभाते हैं। धन को धूल समान

पुद्गल मानते हैं, परन्तु किसी दुकान पर माल-सामान खरीदने के लिए धन लेकर ही जाते हैं, धूल लेकर नहीं।

खास बात तो यह है कि त्रिकाल सत्ता स्वरूप चैतन्य तत्त्व की जागृति के बल पर ज्ञानी भूमिकानुसार व्यवहार निभाने के विकल्पों का स्वामी स्वयं को नहीं मानते हैं।

ज्ञानी की दशा निराली होती है। पानी में चलने पर भी जिन्हें न तो पानी छूता है और हवा में उड़ने पर भी जिन्हें न तो हवा छूती है, क्योंकि पानी और हवा जिस राख की दीवार को छूते हैं, ज्ञानी स्वयं को उस राख की दीवार का पड़ोसी मानते हैं।

आत्मज्ञानी सम्यग्दृष्टी पंडित श्री बनारसीदासजी की तीन शादियाँ हुई थी एवं उन्हें नौ संतानें हुई थी, जिनमें से सात पुत्र एवं दो पुत्रियाँ थी। फिर उन नौ में से एक भी संतान जीवित नहीं रही। जरा विचार करो! यदि एक भी संतान की अपनी आँखो के सामने मृत्यु होती है, तो अज्ञानी को कितनी आकुलता होती है? परन्तु श्री बनारसीदासजी ने सत्य का सहज ही स्वीकार किया। यह सम्यग्दर्शन का ही बल जानो।

भले ही वस्त्र की तुलना में आभूषणों का मूल्य अधिक हो, फिर भी वस्त्र पहनने के बाद वस्त्र के ऊपर आभूषण शोभायमान होते हैं। **सम्यग्दर्शन की तुलना में अणुव्रत एवं महाव्रत अधिक पूज्य हो, फिर भी सम्यग्दर्शन रूपी वस्त्र पर अणुव्रत और महाव्रत के आभूषण शोभायमान होते हैं। बिना वस्त्र के आभूषण पहनना हास्यास्पद होता है।**

जैसे हवा के निमित्त से पेड़ के पत्ते हिलते हैं, ऐसे ही श्वासोच्छवास के निमित्त से राख की दीवार डोलती है, पेट हिलता है। परन्तु जैसे कोई व्यक्ति पेड़ के हिलते पत्ते को पर्वत के शिखर से देखता हो, ऐसे ही ज्ञानी स्वयं को चैतन्य शिखर पर विराजमान मानकर डोलती हुई राख की दीवार को अत्यंत दूर से देखते हैं। जैसे कादव में सोने का मूल्य कम नहीं हो जाता, ऐसे ही गृहस्थ दशा में रहकर ज्ञानी अनुपम आत्मा का रसास्वादन करते हैं। जैसे कादव में लोहे को जंग लग जाता है, ऐसे ही गृहस्थावस्था में मिथ्यादृष्टी लवलीन हो जाता है और अशुद्धता को प्राप्त होता है।

सम्यग्दर्शन गृहस्थ को नहीं होता, साधु को नहीं होता, मनुष्य को नहीं होता, देव को नहीं होता, तिर्यंच को नहीं होता, नारकी को नहीं होता। **सम्यग्दर्शन आत्मा को होता है, आत्मा गृहस्थ भी नहीं, साधु भी नहीं, मनुष्य, देव, तिर्यंच और नारकी में से कुछ भी नहीं।** यद्यपि सम्यग्दर्शन आत्मा को होता है, फिर भी एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय देहधारी आत्मा को नहीं होता है, क्योंकि सम्यग्दर्शन के लिए बाहरी वस्त्र की कोई शर्त नहीं होती है, परन्तु तत्त्वविचार अनिवार्य है। तत्त्वविचार करने की योग्यता संज्ञी पंचेन्द्रिय देहधारी आत्मा को ही होती है, इसलिए **कोई भी संज्ञी पंचेन्द्रिय आत्मानुभूति प्रकट कर स्वयं को राख की दीवार का पड़ोसी मानकर प्रत्येक आत्मा को परमात्मा देख सकता है।**

जैसे कमल का पत्ता पानी में रहकर भी पानी से अलिप्त रहता है, ऐसे ही परिवारजनों के साथ रहकर भी ज्ञानी उनसे अलिप्त रहते हैं।

ज्ञानी मानते हैं कि तीर्थंकर भगवान के ही नहीं, किसी के भी पैर जमीन को छूते नहीं हैं। क्योंकि जमीन के परमाणु का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य और पैर के परमाणु का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वतंत्र होता है। **द्रव्य की स्वतंत्रता की दृष्टि से जब स्पर्श गुणयुक्त पुद्गल द्रव्य उसी जाति के स्पर्श गुणयुक्त अन्य पुद्गल द्रव्य को नहीं छूता है, तब पुद्गल द्रव्य जिसमें स्पर्श नामक गुण ही नहीं है, ऐसे भगवान आत्मा को कैसे छू सकता है?**

आत्मा देह एवं कर्मों के साथ एकक्षेत्रावगाही होने पर भी चैतन्य लक्षण से देखने पर देह एवं कर्मों से न्यारा ही है और हाँ, पर्याय में जो बंधन है, वह भी चैतन्य स्वरूप की जागृति के बल पर निकट काल में छूटने वाला है। दूर से देखने पर आकाश और जमीन मिले हुए नजर आते हैं, निकट जाकर देखने पर दोनों का कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसे ही दूर से देखने पर ज्ञानी संयोगो के साथ मिले हुए नजर आते हैं, परन्तु ज्ञानी के निकट जाकर देखे तो, ज्ञानी का देह एवं कर्मों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

९. एक समय में सम्यग्दर्शन

एक सैकण्ड में असंख्य समय होते हैं। काल के सब से छोटे अंश को समय कहते हैं। **यदि कोई जीव एक समय के लिए ही ऐसा माने कि मैं राख की दीवार का पड़ोसी चैतन्य परमात्मा हूँ, तो अनन्त काल के लिए राख की दीवार से मुक्त होकर अनन्त सिद्ध परमात्माओं के साथ सिद्धालय में विराजमान होता है।** दु:ख की बात यह है कि अज्ञानी के जीवन में अनादि काल से आज तक ऐसा एक भी समय नहीं आया, जब उसने स्वयं को चैतन्य परमात्मा माना हो।

यद्यपि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति एक समय में ही होती है, परन्तु सम्यग्दर्शन प्रकट होने से पूर्व असंख्य समयों तक 'मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा हूँ' ऐसा तत्त्वविचार होता रहता है।

जैसे किसी व्यक्ति ने एक करोड़ रुपये की दस डिजिट की लॉटरी खरीदी। वह व्यक्ति एक के बाद एक नम्बर मिलाता है, प्रथम नौ नम्बर मिलने पर भी वह व्यक्ति स्वयं को करोड़पति नहीं मानता है, परन्तु जैसे ही वह देखता है कि दसवां नम्बर भी मिल गया कि वह स्वयं को निर्धन न मानकर करोड़पति मानने लगता है। यद्यपि वह करोड़पति लॉटरी लगने पर भी उसी क्षण बंगला, गाड़ी, कपड़े, आदि नहीं खरीद लेता, तदपि उस व्यक्ति ने स्वयं को करोड़पति तो मान ही लिया है। चारित्र में स्पष्ट निर्धनता दिखाई देती होने पर भी वह व्यक्ति श्रद्धा में तो स्वयं को करोड़पति ही मानता है।

श्रद्धा बड़ी कोमल होती है, सोने के महल को बनने में बरसों बीत जाते हैं, परन्तु गिरने में चंद लम्हें ही पर्याप्त हैं। जीवन के मात्र एक अनुभव से श्रद्धा

पैदा हो जाती है और मिट भी जाती है। त्रिकाल चैतन्य जीवन की एक समय की अनुभूति से मिथ्या श्रद्धा छूट जाती है और सम्यक् श्रद्धा प्रकट हो जाती है।

तस्वीर (फोटो) और चलचित्र (विडियो) में अन्तर है। सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा की तस्वीर और केवलज्ञान अर्थात् आत्मा सहित लोकालोक का चलचित्र। जिन्हें फोटोग्राफी करना आता हो, उनमें विडियोग्राफी करने की कला भी होती है।

पेड़ को काटने के कारण धूल नहीं चिपकती है, बल्कि तेल के कारण धूल चिपकती है। ऐसे ही **पाँच पाप करने पर भी मिथ्यात्व रूपी तेल से मुक्ति मिलने के कारण ज्ञानी को कर्मबंधन नहीं होता है।**

राग को ही अपना न माना, तो फिर कर्मों को और देह को अपना कैसे मानेंगे? चैतन्य सूर्य के निकट जाकर अनुभव करने पर ही यह भ्रम दूर होता है कि रागादि भावरूपी बादल और देहरूपी मिट्टी चैतन्य सूर्य से अत्यंत दूर ही है।

यदि कोई जीव शरीर में सुख माने तो वह मिथ्यादृष्टी है, ऐसे ही यदि कोई जीव शरीर में चारित्र माने तो वह भी मिथ्यादृष्टी है। क्योंकि दोनों ही व्यक्ति आत्मा के गुणों को शरीर में मानते हैं। आत्मा का धर्म आत्मा में ही प्रकट हो सकता है। आत्मा के धर्म को अनात्मा में घटित करना ही अधर्म है।

तीर्थंकर जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक होते हैं, अत: इस भव में सम्यग्दर्शन की घटना का उल्लेख नहीं मिलता है। यही कारण है कि जन्म कल्याणक के पश्चात् सम्यग्दर्शन नामक कल्याणक न होकर दीक्षा कल्याणक होता है। अज्ञानी मनुष्य जन्म को अत्यंत दुर्लभ जानकर तीर्थंकरों के पथ पर चलना चाहता है और दीक्षा धारण कर लेता है। परन्तु सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का पुरुषार्थ ही नहीं करता।

अनन्तानुबंधी क्रोध का छूट जाने का अर्थ यह नहीं है कि दूसरे जीवों के प्रति क्रोध छूट जाना। गहन रहस्य तो यह है कि निजात्मा के प्रति क्रोध का भाव छूट जाने का नाम अनन्तानुबंधी क्रोध का छूटना है। अप्रत्याख्यानावरणादि क्रोध का सम्बन्ध दूसरे जीवों के साथ समझना चाहिये।

मैं अनन्त गुणाधिपति चैतन्य परमात्मा हूँ, फिर भी अनादि काल से स्वयं को देह मानकर चैतन्य स्वरूप का आश्रय नहीं लिया, निजात्मा की ओर ध्यान ही नहीं दिया, यही अनन्तानुबन्धी क्रोध है। भरत चक्रवर्ती को संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा का भाव आता था, वह अनन्तानुबन्धी क्रोध का नहीं, बल्कि अप्रत्याख्यानावरण क्रोध का स्वरूप है।

मैं सिद्ध समान चैतन्य परमात्मा हूँ, फिर भी अनादि काल से स्वयं को पामर मानकर सिद्ध स्वरूप का आश्रय नहीं लिया, निजात्मा की ओर ध्यान ही नहीं दिया, यही अनन्तानुबन्धी मान है। भरत चक्रवर्ती को छह खंड का स्वामी होने का अभिमान था, वह अनन्तानुबन्धी मान का नहीं, बल्कि अप्रत्याख्यानावरण मान का स्वरूप है।

मैं सहजानन्दी शुद्ध स्वरूपी अविनाशी चैतन्य परमात्मा हूँ, फिर भी अनादि काल से स्वयं को पर्याय स्वरूप मानकर सहजानन्दी शुद्ध स्वरूपी अविनाशी स्वरूप का आश्रय नहीं लिया, निजात्मा की ओर ध्यान ही नहीं दिया, शुद्धात्म द्रव्य का स्वरूप पर्याय में भी शुद्ध अनुभव में नहीं आया, यही अनन्तानुबन्धी माया है। भरत चक्रवर्ती को छह खंड के शत्रुओं के प्रति जो माया का भाव उत्पन्न होता था, वह अनन्तानुबन्धी माया का नहीं, बल्कि अप्रत्याख्यानावरण माया का स्वरूप है।

मैं परिपूर्ण शुद्ध चैतन्य परमात्मा हूँ, फिर भी अनादि काल से स्वयं को अपूर्ण दीन-हीन मानकर परमात्म स्वरूप का आश्रय नहीं लिया, निजात्मा की ओर ध्यान ही नहीं दिया और पर पदार्थो से स्वयं को तृप्त करना चाहा, यही अनन्तानुबन्धी लोभ है। भरत चक्रवर्ती को सम्पदा का लोभ था, वह अनन्तानुबन्धी लोभ का नहीं, बल्कि अप्रत्याख्यानावरण लोभ का स्वरूप है।

१०. स्वरूप की महिमा

जो जीव सत्य को उपलब्ध होना चाहता हो, उस जीव को चाहिये कि वह स्वरूप को प्रधानता दे, व्यक्ति विशेष को नहीं। ज्ञानी कहते हैं कि इस जीव ने स्वरूप को समझे बिना अनन्त दु:ख पाया है, व्यक्ति को समझे बिना नहीं। स्वरूप की महिमा के कारण ही परम कृपालु देव ने आत्मसिद्धि शास्त्र की आठ गाथाओं में दस बार एवं वचनामृत में २४० बार स्वरूप शब्द का प्रयोग किया हैं। कृपालु देव ने जीवन के अन्तिम क्षणों में कहा था, 'कोई मुझे बुलाना मत, मैं अपने स्वरूप में लीन होता हूँ'।

सात व्यसन और पांच पाप से भी बड़ा पाप मिथ्यात्व है। सात व्यसन एवं पाँच पाप के सेवन करने का फल नरक गति है, निगोद नहीं। सात व्यसन एवं पाँच पाप का सेवन छोड़ने का फल देव गति है, मोक्ष नहीं। परन्तु यदि कोई जीव स्वरूप नहीं समझता है, तो निगोद में अनन्त काल तक अनन्त दु:ख भोगता है और यदि कोई जीव स्वरूप को समझता है, तो मोक्ष में अनन्त काल तक अनन्त सुख भोगता है।

जरा विचार करो! निगोदिया जीव ने अनादि काल से एक बार भी सात व्यसन का सेवन नहीं किया है। फिर भी उसका संसार परिभ्रमण क्यों? बस एक ही मूल कारण है कि उस जीव ने स्वरूप को नहीं समझा है।

नरक गति के दु:ख से निगोद का दु:ख अनन्त गुना अधिक कहा है। नरक में सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि जीवन सम्बन्धी दु:ख ही है, जबकि निगोद में जन्म एवं मरण सम्बन्धी दु:ख है। जीवन सम्बन्धी दु:ख से जन्म-मरण सम्बन्धी

दु:ख अनन्त गुना अधिक होता है। आप ही विचार करो! यदि आपको कोई कहे कि तुम्हें अनेक दिनों तक भूखा-प्यासा रहना पसंद है या तुम्हें मार दें? इन दो विकल्पों में से किसी एक विकल्प को चुनो। आप निश्चित ही भूखे-प्यासे रहना पसंद करेंगे, परन्तु मरना तो नहीं चाहेंगे। सार यह है कि सात व्यसन से भी अधिक अहितकारी मिथ्यात्व से मुक्त हुए बिना मोक्ष तो दूर, मोक्षमार्ग भी प्राप्त नहीं हो सकता।

जब मुनिराज ऋषभदेव को भोजन का विकल्प था, तब आहार में एक दाना भी न मिला और जब भगवान ऋषभदेव को समवसरण का विकल्प नहीं था, तब समवसरण की रचना हुई। इससे हम समझ सकते हैं कि जीव के विकल्प बाह्य संयोगों की प्राप्ति में निरर्थक ही हैं। धन कमाने का विकल्प एवं अनुकूल वस्तु को पाने का विकल्प अनन्त संसार का कारण नहीं है, बल्कि विकल्प से धन की कमाई होती है एवं विकल्प से अनुकूल वस्तु की प्राप्ति होती है, यह मान्यता मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व ही अनन्त संसार का कारण है।

पुण्य से धन मिलता है और पाप से बीमारी आती है, ऐसा नहीं है। पुण्य के उदय से धन मिलता है और पाप के उदय से बीमारी आती है। वास्तव में जब धन बैंक से घर में आता है, तब धन के क्रियावती गुण की गति पर्याय की उस समय की स्वतंत्र योग्यता के कारण आता है, उस समय पुण्य के उदय को निमित्त मात्र कहा जाता है। ऐसे ही शरीर में बुखार आता है, जब शरीर के परमाणु शीतल से उष्ण होते हैं, तब स्पर्श गुण की शीतल पर्याय से उष्ण पर्याय में रूपांतरित होने की स्वतंत्र योग्यता होती है, उस समय पाप के उदय को निमित्त मात्र कहा जाता है।

अरे भाई! भले ही पुण्य के उदय से धन आये, परन्तु चैतन्य स्वरूप में धन नहीं आता हैं या पाप के उदय से बीमारी आये, परन्तु चैतन्य स्वरूप में बीमारी नहीं आती है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर वीतरागता का धन और राग की बीमारी का भी स्वरूप में प्रवेश नहीं हो सकता, तब बाहरी धन और बीमारी का तो कहना ही क्या? वीतरागता का जन्म है और राग का मरण है। वीतरागता सादि-अनन्त है और राग अनादि-सांत है। मैं चैतन्य स्वरूपी भगवान आत्मा

अनादि-अनन्त हूँ। अरे! ऐसा कौन मूर्ख होगा जो सागर को छोड़कर गागर में अपनापन करना चाहेगा? सिंधु को छोड़कर बिंदु में अपनापन करना चाहेगा? रेखा को न ग्रहण कर बिंदु को ग्रहण करना चाहेगा?

कोई कहता है कि उस जीव का पुण्य का उदय ऐसा है कि उसे यश:कीर्ति नाम कर्म के उदय से यश प्राप्त होता है। परन्तु याद रहे, यश:कीर्ति नाम कर्म को एवं कर्म के उदय में मिलने वाले यश को अपना स्वरूप मानना और स्वयं को चैतन्य मात्र शुद्धात्मा न मानना मिथ्यात्व नामक अधर्म है।

केवलज्ञान प्रकट होता है, तब अनन्त निगोदिया जीवों की हिंसा होती है। फिर भी उपयोग निजात्मा में स्थिर होने से धर्म है। हे साधक! **निजात्मा का घात न हो, इसका नाम धर्म है।**

ज्ञान में जानना, श्रद्धा में मानना और चारित्र में सम्हालना। शुद्धात्मा को जानना, मानना और उसी में स्थिर होना। आत्मानुभूति होते ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी रत्नत्रय की प्राप्ति होती है। आत्मानुभूति होते ही मानो हीरे-मोती बरसते हैं, हीरे-मोती ही नहीं बरसते हैं, कंकड़-पत्थर भी हीरे मोती हो जाते हैं। आत्मा को ही नहीं, प्रत्येक ज्ञेय को जानने के काल में ज्ञान ही जानने में आता है।

जब कोई पुरुष पानी में नमक को मिलाकर खारेपन का अनुभव करता है, तब लोक में ऐसा देखा जाता है कि वह पुरुष पानी का स्वाद चख रहा है, परन्तु सत्य तो वह पुरुष ही जानता है और अन्य पुरुष जानते हैं जिन्होंने ऐसा रस चखा है। ज्ञानी की दशा भी न्यारी होती है। लोक में अज्ञानी देखते हैं कि ज्ञानी जगत को जानते हैं, जगत का रसपान करते हैं। वास्तव में ज्ञानी ज्ञेयों के रस का नहीं, बल्कि ज्ञान का रसपान करते हैं। वे ही महापुरुष इस स्वरूप को समझ सकते हैं, जिन्होंने चैतन्य का रसपान किया हो।

पुद्गल द्रव्य रूपी है, इसका अर्थ सिर्फ इतना नहीं होता है कि उसमें रंग है। रूपी अर्थात् जिसमें स्पर्श, रस, गंध एवं वर्ण आदि गुण पाये जाते हैं। रूपी कहते ही उसमें पुद्गल के अनन्त गुणों की एकता शामिल है, ऐसे ही मैं चैतन्य

स्वरूपी हूँ, ऐसा कहते ही भगवान आत्मा के ज्ञान, दर्शनादि अनन्त गुणों की एकता शामिल है।

दृष्टि का विषय त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा परद्रव्य से सर्वथा भिन्न और अपनी पर्याय से कथंचित् भिन्न है। यदि द्रव्य को परद्रव्य की तरह पर्याय से भी सर्वथा भिन्न मान लिया जाये, तो श्रद्धा गुण की पर्याय जब आत्मद्रव्य में एकत्व करेगी, तब भी पर में एकत्व करने के कारण मिथ्यात्वरूप ही परिणमित होगी, परन्तु ऐसा नहीं है।

गहराई से देखने पर स्वरूप अत्यंत निराला है। **लिखने का विकल्प और पढ़ने का विकल्प भी आत्मा में उत्पन्न होने वाला घना अंधेरा ही है।** इन विकल्पों का असंख्य प्रदेशी अखण्ड चैतन्य घनपिण्ड में प्रवेश हो ही नहीं सकता। देह तो पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड है, परन्तु चैतन्य तत्त्व अनन्त गुणों का घनपिण्ड है। जैसे अनन्त गुणों के घनपिण्ड एक परमाणु में किसी भी अन्य परमाणु मात्र का प्रवेश नहीं हो सकता है, ऐसे ही अनन्त गुणों के घनपिण्ड भगवान आत्मा में किसी भी परद्रव्य का प्रवेश नहीं हो सकता है।

इस जगत में मेरा कुछ भी नहीं है। यदि पुद्गल मेरा होता, तो जैसा स्वरूप है, ऐसा मानने पर सम्यग्दर्शन प्रकट होना चाहिए। परन्तु पुद्गल को अपना मानने से मिथ्यादर्शन होता है, क्योंकि जैसा वस्तु स्वरूप है, ऐसा न मानकर विपरीत माना।

ज्ञान का दीपक प्रज्वलित होते ही अज्ञान का अंधेरा दूर हो जाता है। अहो! कैसा अद्भुत स्वरूप है! मिथ्यात्व में परिणमित होने वाला मेरा स्वभाव ही है। श्रद्धा सम्यक् होने पर मिथ्यात्व कहीं नहीं दिखाई देता। जैसे रस्सी में लगी हुई गांठ को खोलने पर एहसास होता है कि गांठरूप परिणमित होने वाली रस्सी ही थी। उल्टी फंसी हुई रस्सी का नाम ही गांठ है, ऐसे ही विपरीत श्रद्धा का नाम ही मिथ्यादर्शन है।

११. जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि

ज्ञान भाव का कर्त्ता ज्ञानी है, अज्ञान भाव का कर्त्ता अज्ञानी है। द्रव्य कर्म का कर्त्ता ज्ञानी भी नहीं है और अज्ञानी भी नहीं है। **द्रव्यकर्म का कर्त्ता पुद्गल द्रव्य है। आत्मा अपने ही परिणामों का कर्ता हो सकता है, परद्रव्य के परिणमन का नहीं।**

जैसे गाय को हरे रंग का चश्मा पहनाने पर उसे सूखी घास भी हरी ही दिखती है, ऐसे ही ज्ञानी को पापी भी परमात्मा दिखते हैं। एक दादी ने अपने पोते से कहा कि आज बाहर मत निकलना, क्योंकि बाहर बहुत कोहरा छाया है, पोते ने कहा, दादी! खिड़की पर धूल जमी है, बाहर तो सब ठीक है।

एक पत्नी ने अपने पति से कहा कि हमारी नयी पड़ोसन को ठीक तरह से साफ कपड़े धोना ही नहीं आता है। पत्नी करीब दो सप्ताह तक अपने पति से पड़ोसन की निंदा करती रही। फिर एक दिन पत्नी ने पति से कहा कि देखो! पड़ोसन ने हमारी बातें सुन ली है, ऐसा लगता है। आज उसने कपड़े बहुत साफ धोये है। पति ने कहा आज ही मैंने अपने घर की खिड़की का काँच साफ किया है, कपड़े तो पहले भी साफ ही धुलते थे।

उक्त कथन का आशय यह है कि दृष्टि पलटते ही प्रत्येक अवस्था का सहज स्वीकार होता है। याद रहे, एक पर्याय का अस्वीकार अनन्त केवली का अनादर है। क्योंकि अज्ञानी जिस पर्याय को अयोग्य मानकर अस्वीकार करता है, अनन्त केवली की अनन्तानन्त केवलज्ञान पर्याय में वह पर्याय योग्य है, ऐसा स्वीकार होता है। किसी भी पर्याय को अयोग्य मानने में अनन्त केवली का विरोध करने का दोष लगता है। **एक चैतन्य तत्त्व में एकत्व स्थापित होने**

पर पर्याय में एकत्व नहीं होता है और पर्याय से एकत्व छूटने पर ही पर्याय का स्वीकार हो सकता है, होता है।

आजादी के दौरान गणित के एक शिक्षक को कारागृह जाना पड़ा था। जब वह कारागृह से वापिस लौटा, तब उससे पूछा गया कि कारावास कैसा रहा? तो उसने कहा कि बाकी सब तो ठीक था, परन्तु कारागृह का कोना ९० डिग्री पर नहीं बना था, पता नहीं किस मूर्ख ने यह कोना बनाया होगा? उस शिक्षक की दृष्टि में छह महिने तक कारागृह का कोना ही बना रहा।

जैसे मिथ्यादृष्टी को शुद्धात्म स्वरूप त्रिकाल विद्यमान होने पर भी दृष्टि मिथ्या होने से शुद्ध स्वरूप दृष्टि में नहीं आता है, पर्याय ही दृष्टि में आती है, ऐसे ही सम्यग्दृष्टी को पर्याय में मलिनता होने पर भी दृष्टि सम्यक् होने से पर्याय दृष्टि में नहीं आती है, द्रव्य ही दृष्टि में आता है।

लोक में भी कहते हैं कि 'आप भला तो जग भला।'

एक शिष्य ने गुरु से मनुष्य जीवन का मूल्य पूछा। गुरु ने कहा कि इस पत्थर को लेकर बाजार में जाकर इसका मूल्य पूछ। परन्तु याद रहे कि इस पत्थर को बेचना नहीं है। शिष्य ने फल की दुकान पर जाकर पत्थर का मूल्य पूछा, तो फल बेचने वाले ने कहा कि इस पत्थर के बदले में तुझे चार संतरे मिलेंगे। फिर शिष्य ने सब्जी की दुकान पर पूछा, तो व्यापारी ने कहा कि इस पत्थर के बदले में तुझे चार किलोग्राम लौकी मिलेगी। फिर शिष्य ने किसी हीरे के व्यापारी को पूछा तो उसने कहा कि इस पत्थर के बदले में पचास लाख रुपये मिलेंगे और किसी ने कहा दो करोड़ रुपये मिलेंगे। आखिर रूबी के जानकार ने कहा कि यह तो अमूल्य रूबी है। जब शिष्य ने गुरु को अपना अनुभव सुनाया, तब गुरु ने कहा कि मनुष्य जीवन भी ऐसा ही है। सभी लोगों के अपने-अपने दृष्टिकोण हैं। अज्ञानी की दृष्टि में यह मनुष्य जीवन विषय भोगों के साधनों को जुटाने के लिए है और ज्ञानी की दृष्टि में मनुष्य जीवन चैतन्य रत्न की उपलब्धि के लिए है। अमूल्य मनुष्य भव व्यर्थ में बर्बाद हो जाने से पहले अमूल्य चैतन्य रूबी की ओर दृष्टि कर लेने में समझदारी है।

१२. धर्म का मूल सम्यग्दर्शन

सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है, चारित्र वृक्ष है और मोक्ष फल है। एक सम्यग्दर्शन प्रकट होने पर सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र दोनों सहज ही प्रकट होते हैं। 'बाय वन एन्ड गेट टू फ्री', यही इस बारहवें प्रकरण का सार है।

जैसे वृक्ष उगने से पहले बीज का विकास जमीन में अंधेरे में ही होता है, बच्चा माता के गर्भ में अंधेरे में ही विकसित होता है, दीपक का प्रज्वलन अंधेरे में ही होता है, ऐसे ही मिथ्यात्व के अंधकार में ही तत्त्वविचार करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का पुरुषार्थ प्रारम्भ होता है। यदि दीपक जलाते समय भूल हो जाये, तो निराश होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दीपक जलाने का कार्य अंधेरे में ही होता है और अंधेरे में भूल हो जाना स्वाभाविक है। **साधक को स्वरूप को प्रधानता देकर निरंतर तत्त्वविचार करना चाहिए।** जैसे बीज के अंकुरित होने पर ही वृक्ष की उत्पत्ति, विकास एवं पूर्णता होती है। ऐसे ही सम्यग्दर्शनरूपी बीज अंकुरित होने पर ही वीतरागतारूपी चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि एवं पूर्णता होती है।

किसी भी वस्तु को अपना मानकर छोड़ने पर अत्यंत दु:ख होता है। देहादि परद्रव्यों को एवं रागादि परभावों को छोड़ने से पहले उन्हें अपना मानना छोड़ना अनिवार्य है। चैतन्य तत्त्व का लक्षण परद्रव्य एवं परभाव से न्यारा है। देहरूपी मिट्टी एवं रागादि विकारी भावों का धुआँ चैतन्य ज्योति में कहीं भी नहीं है।

पांचवे गुणस्थान में अणुव्रत एवं छठवें गुणस्थान में महाव्रत के पालन से पहले चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। **क्योंकि सम्यग्दर्शन के**

अभाव में अणुव्रत एवं महाव्रत का पालन करने की कर्त्तृत्वबुद्धि का पोषण न हो, इसलिए सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करने का उपदेश दिया है। जैसे मुनि होने पर ही मोक्ष होता है, ऐसे ही सम्यग्दर्शन प्रकट होने पर ही मुनिधर्म का पालन होता है।

यदि मूल में ही भूल होगी, तब वृक्ष का उगना ही असंभव होगा। चीन में माओ की माँ बीमार थी, तब माँ ने बेटे से कुछ दिनों के लिए बगीचे में पौधों को पानी पिलाने के लिए कहा। जब माँ स्वस्थ हुई और बगीचे में जाकर देखा, तो एक भी पौधा जीवित नहीं था। माँ ने बेटे से पूछा कि तुमने पौधों को पानी नहीं पिलाया था क्या? माओ ने उत्तर देते हुए कहा कि माँ, मैंने हर एक पौधे के हर एक पत्ते को, डाली को और फूलों को बहुत अच्छी तरह से पानी पिलाया था। माँ ने कहा, रे मूर्ख! पौधे के पत्ते, डाली और फूलों को नहीं, पौधे की जड़ों को पानी पिलाना चाहिये।

पेड़ की डाली को काटने से पेड़ नष्ट नहीं होता है, परन्तु पेड़ को जड़ से निकालने पर पेड़ नष्ट हो जाता है। यदि पेड़ को जड़ से न निकाला जाये और सिर्फ डालियाँ काटी जायें, तो पेड़ अधिक घटादार होता है। ऐसे ही मिथ्यात्वरूपी जड़ दूर हुए बिना बाह्य व्रतादि कषाय के दमन के ही कारण होते हैं।

चौथे गुणस्थान से सिद्ध भगवान पर्यन्त समस्त जीवों में सम्यग्दर्शन होता है। कुछ साधन ऐसे होते हैं, जो साध्य की प्राप्ति होने पर छूट जाते हैं और कुछ साधन ऐसे होते हैं, जो साध्य की प्राप्ति होने पर भी टिक कर रहते हैं। नदी पार करने के लिए सामने किनारा आने पर नावरूपी साधन का छूट जाना अनिवार्य है, परन्तु वृक्ष पर डाली, पत्ते, फूल एवं फल लगने पर वृक्ष का मूल नष्ट नहीं हो जाता है। सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है, जो मोक्षरूपी फल की प्राप्ति होने पर भी टिक कर रहता है। सिद्ध भगवान को भी पुण्य-पाप की श्रद्धा होती है।

जैसे ट्रेन द्वारा मुम्बई से दिल्ली पहुँचने पर सफर की श्रद्धा छूट नहीं जाती है, ऐसे ही सिद्ध भगवान को सिद्धत्व के पश्चात् भी पुण्य-पापरूपी संसारमार्ग एवं मोक्षमार्ग की श्रद्धा होती है।

१३. सिरफिरा मुसाफिर

एक बार परदेस में किसी मुसाफिर का आगमन हुआ। वह मुसाफिर परदेस की भाषा नहीं जानता था। उसने एक महल देखा और देखते ही मोहित हो गया। उस मुसाफिर ने किसी सज्जन से पूछा, 'यह महल किसका है?' उस सज्जन ने उस देश की भाषा में कहा, 'ता ताउ' अर्थात् 'नहीं जानता'। इस मुसाफिर ने समझा कि यह महल 'ता ताउ' का है। उसे ईर्ष्या होने लगी कि ता ताउ ने कितना बड़ा महल बनाया है?

आगे चलकर उसने समुद्र किनारे बहुत बड़ा जहाज देखा। उस जहाज में से बहुमूल्य सामान उतारा जा रहा था। उसने किसी सज्जन से पूछा कि इतना सारा बहुमूल्य सामान किसका है? इस बार भी वे सज्जन परदेसी की भाषा को नहीं समझे और उन्होंने कहा, 'ता ताउ'। यह सुनकर परदेसी की ईर्ष्या और बढ़ गई।

आगे चलते हुए परदेसी ने देखा कि किसी की अर्थी जा रही है। उसने फिर एक सज्जन से पूछा, 'यह किसकी अरथी जा रही है?' सज्जन ने उत्तर दिया, 'ता ताउ'। यह सुनकर परदेसी खुश हुआ कि बड़े महल एवं बहुमूल्य सामान का मालिक 'ता ताउ' मर गया।

वास्तव में 'ता ताउ' नामक कोई व्यक्ति नहीं है, फिर भी परदेसी तरह-तरह की झूठी कल्पनायें करके व्यर्थ ही कषायभावों का पोषण करता रहा। ऐसे ही प्रत्येक मिथ्यादृष्टी देह में अपनापन करता हुआ झूठी कल्पना करता है और तड़पता हुआ देह को छोड़ता है और जन्म-मरण करता है।

'अपनापन' का सूक्ष्म स्वरूप बाहरी क्रियाओं के बल पर नहीं नापा जाता। जैसे कोई पत्नी अपने घर मेहमान को भोजन परोसते समय अपने पति को मधुमेह की बीमारी होने से पति द्वारा विनती किये जाने पर भी पति को रसगुल्ला नहीं परोसती है, परन्तु मेहमान को मनुहार करके रसगुल्ले खिलाती है। भले ही पत्नी का प्रेमभाव मेहमान के प्रति अधिक दिखाई देता हो, परन्तु पत्नी की श्रद्धा में पति के प्रति ही अधिक अपनापन और प्रेम है। नौकर अपनी झोंपड़ी में सोने के लिए जाता है, क्योंकि वह मानता है कि सेठ का बंगला मेरा नहीं है, परन्तु झोंपड़ी का मालिक मैं हूँ। वह मानता है कि यदि वह झोंपड़ी में सोयेगा तो मालिक सोयेगा और बंगले में सोयेगा, तो नौकर सोयेगा। वह दिन भर नौकर के रूप में रहता है, परन्तु रात्रि में मालिक के रूप में सोना चाहता है।

जैसे अज्ञानी को देह में एकत्व करने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता, वह जिस देह में प्रवेश करता है, उस देह में अपनापन करता है। ऐसे ही **सम्यग्दृष्टी का आत्मा में एकत्व सहज ही होता है, वे जिस देह में प्रवेश करते हैं, उस देह में अपनापन न करके आत्मा में ही अपनापन करते हैं।**

बचपन की यह सच्ची घटना है। पड़ोस में ही ऐसा हुआ था। पड़ोस में किसी की पत्नी मर गई थी। जिनकी पत्नी मर गई थी, वह आदमी जोर-जोर से चिल्ला-चिल्लाकर रो रहा था। तभी एक सज्जन वहाँ पधारे। उस रोते हुए आदमी के कंधे पर हाथ रखकर वे बोले, आत्मा तो अमर है। फिर भी वह आदमी रोता ही जा रहा था क्योंकि वह आदमी आत्मा के साथ शादी करके नहीं आया था। वह शरीर के साथ शादी करके आया था, जो शरीर थोड़ी ही देर में जल कर राख होने वाला था। मैं उस दृश्य को दूर से देख रहा था। जब थोड़े दिन बाद उस सज्जन की पत्नी मर गई, तब मैंने उनके कंधे पर हाथ रखकर उनके कान में कहा कि आत्मा तो अमर है। तब उन्होंने मुझे जोर से धक्का देकर दूर फेंक दिया। उस समय रोती हुई भीड़ में उपस्थित लोगों का ध्यान इस ओर गया ही नहीं। आशय यह है कि जब किसी पराये की मृत्यु होती है, तब दूरी होने के कारण नया-नया बोध प्रकट होता है। जहाँ अपनापन होता है, वहाँ यह बोध स्मरण में नहीं आता है कि आत्मा अमर है। ज्ञानी को देह और देह

के संयोगो से भेदज्ञान होने से प्रतिसमय आत्मजागृति रहती है। **पर से जितना परायेपन का बोध होगा, उतनी स्वरूप की जागृति अधिक रहेगी।**

स्वरूप को प्रधानता दो। यदि मरीज का इलाज करना हो, तो डॉक्टर उसका नाम तक नहीं जानना चाहता। पलंग पर लेटे मरीज की पहचान नंबर से होती है, कैदी की पहचान नंबर से होती है, विद्यार्थी की पहचान नंबर से होती है, जिससे किसी भी प्रकार का पक्षपात न हो। ऐसे ही ज्ञानी स्वरूप को प्रधानता देते हैं। वस्तु स्वरूप में किसी भी प्रकार का पक्षपात नहीं होता है।

क्षणिक के भोग का फल क्षणिक नरक है, नित्य नरक नहीं। क्षणिक के त्याग का फल भी क्षणिक स्वर्ग है, नित्य स्वर्ग नहीं। नित्य आत्मा के अनुभव का फल नित्य मोक्ष है। आशय यह है कि क्षणिक का फल क्षणिक और नित्य का फल नित्य मिलता है।

आग्रह एवं अहंकार में फंसकर अपने धर्म को पुराना सिद्ध करने में अमूल्य समय, शक्ति एवं परिणाम बिगाड़ने से क्या लाभ है? कोई भी वस्तु सबसे पुरानी होने से सत्य नहीं हो जाती है, क्योंकि सबसे पुराना तो मिथ्यात्व भी है, अज्ञान भी है, राग-द्वेष भी है। अब तो कुछ नूतन प्रकट करने का अवसर प्राप्त हुआ है। अपूर्व आत्मानुभूति एवं निराकुल अतीन्द्रिय आनन्द की मस्ती का कारण चैतन्य तत्त्व की निर्विकल्प अनुभूति हेतु मैं त्रिकाली चैतन्य सत्ता मात्र भगवान आत्मा हूँ, ऐसा तत्त्वविचार करना चाहिए।

जैसे पंखे की घूमने की गति मंद हो, तो कंकड़ को घूमते पंखे पर फेंकने से कंकड़ पंखों के बीच से अवकाश पाकर छत को छू जायेगा, परन्तु यदि पंखे की गति तेज हो, तो कंकड़ को पंखे की दो पंखों के बीच से जाकर छत तक पहुँचने का अवकाश ही नहीं मिलेगा। ऐसे ही तत्त्वविचार की गति ऐसी हो कि व्यर्थ के विकल्पों को प्रवेश करने के लिए अवकाश ही न मिले।

१४. सम्यग्दृष्टी के भोग निर्जरा के हेतु

पाप छोड़ने योग्य है, यह जानकर भी ज्ञानी पाप करते हैं और अज्ञानी पाप छोड़ने योग्य न जानकर अनजान होकर पाप करता है। गहन रहस्य यह है कि अज्ञानी की तुलना में ज्ञानी को कर्मबंध अल्प होता है। क्योंकि अज्ञान और असंयम में से ज्ञानी को मात्र असंयम सम्बन्धी कर्मबंधन होता है, जबकि अज्ञानी को अज्ञान एवं असंयम इन दोनों कारणों से कर्मबंधन होता है।

ज्ञानी को भोग के भाव के कारण निर्जरा नहीं होती है, बल्कि भोग के भाव के काल में जितने अंशों में वीतराग परिणति प्रकट है, उस वीतराग परिणति के कारण कर्मों की निर्जरा होती है। अशुभोपयोग हो या शुभोपयोग हो, ज्ञानी को प्रतिसमय वीतराग परिणति के बल पर कर्मों की निर्जरा होती है।

जैसे तीर्थंकर की मुक्ति में समवसरण की रचना भी कारणभूत है, क्योंकि प्रतिसमय तीर्थंकर का पुण्य उदय में आता है और आत्मा अघाति कर्मों से मुक्त होता है। ऐसे ही पूर्वकृत कर्मोदय से ज्ञानी को प्राप्त भोग में सुखबुद्धि नहीं होने के कारण ज्ञानी को कर्मों की निर्जरा होती है।

जब आदिनाथ भगवान की दिव्यध्वनि खिर रही थी, भरत चक्रवर्ती साठ हजार वर्षों तक युद्ध करने निकल गये थे। जैसे दुकान में खड़े दो ग्राहकों में से पहले ग्राहक के साथ सौदा एक मिनट में और दूसरे ग्राहक के साथ सौदा करने में घण्टों लगने वाले हों, तो दुकानदार कम समय जिसमें लगेगा ऐसे पहले ग्राहक को पहले सम्हाल लेता है।

अनन्त काल तक चलने वाले आत्मध्यान के व्यापार की तुलना में साठ

हजार वर्ष तक युद्ध में कम समय लगता होने से भरत चक्रवर्ती पहले युद्ध करके छह खंड को जीतने के लिए जाते हैं और बाद में छह खंड के वैभव को भी छोड़कर आत्मध्यान में स्थिर होते हैं।

याद रहे, मात्र सम्यग्दृष्टी का ही नहीं, मुनियों का आचरण भी सर्वथा आदर्श मानने योग्य नहीं है। विष्णुकुमार मुनि को मुनिपद छोड़कर अकम्पनाचार्यादि सात सौ मुनिराजों की रक्षा करने का भाव आया था, यह कार्य मुनिधर्म के पालन से तो हीन ही था, अत: मुनियों के आचरण को सर्वथा उपादेय नहीं समझना चाहिए।

कमजोर व्यक्ति ज्ञानी की कमजोरी को देखता है और पुरुषार्थी जीव ज्ञानी के पुरुषार्थ को देखता है। भोगों को भोगने का राग ज्ञानी की कमजोरी है और भोगों को भोगने के राग के विकल्पों में भेदविज्ञान ज्ञानी का पुरुषार्थ है।

किसी को भरत चक्रवर्ती भोजनालय दिखाई देता है और किसी को आध्यात्मिक साधना केन्द्र दिखाई देता है। किसी जीव को भरत चक्रवर्ती की खीर ही याद आती है, उसका ध्यान उस बात की ओर जाता ही नहीं है कि जब भरत चक्रवर्ती अपने महल में सामायिक मुद्रा में खड़े होते थे, तब शरीर की स्थिति ऐसी हो जाती थी कि उंगली में पहनी अंगुठी नीचे गिर जाती थी।

ज्ञानी भोगों को भोगते भी नहीं हैं और भोगों से भागते भी नहीं हैं, बल्कि ज्ञानी तो बस भोगों के काल में भी भोगों को जानते हैं। उन्हें भोगों में एवं भोगने के भावों में फेरफार करने का भाव ही नहीं आता है।

सम्यग्दृष्टी के भोग निर्जरा के हेतु कहे हैं, इसका आशय चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टी समझना चाहिए। ज्ञानी भोगों को जूठन जानते हैं। वे मानते हैं कि जैसे रेत में से तेल नहीं निकल सकता, ऐसे ही इन्द्रिय विषयभोगों में से सुख नहीं पाया जा सकता। जैसे दर्पण में मुख दिखाई देता है, परन्तु मुख होता नहीं है, ऐसे ही संसार में अज्ञानी को सुख दिखाई देता है, परन्तु सुख होता नहीं है।

भोगों के काल में भी ज्ञानी को चैतन्य तत्त्व में एकत्व एवं पर से विरक्तपना होने से ज्ञानी के भोग निर्जरा के हेतु हैं।

१५. सम्यग्दृष्टी का पागलपन

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के चाहक सच ही दीवाने होते हैं। दीवाने इतिहास रचते हैं और विद्वान इतिहास का रटन करते हैं। जब तुम चैतन्य तत्त्व की मस्ती में मस्त हो जाओगे, तब यह जमाना आपको कहेगा कि आपकी दिमागी हालत ठीक नहीं है। आपको पागल, धुनी एवं मूर्ख जैसे संबोधन से पुकारा जा सकता है। यह निर्णय आपको करना है कि आप अनन्त केवली भगवान के ज्ञान में ज्ञानी होना चाहते हो या अज्ञानियों के ज्ञान में ज्ञानी?

अहो! कैसी ज्ञानी की अद्‌भुत दशा? **ज्ञानी को कोई हरा नहीं सकता, क्योंकि जीतने के लिए जो लोग कतार में खड़े होते हैं, उस कतार में ज्ञानी खड़े ही नहीं होते हैं।** भले ही ज्ञानी का बाहरी चारित्र कमजोर दिखाई देता हो, परन्तु ज्ञानी अंतरंग में अनन्त सिद्धों के संग विराजमान होने की यात्रा कर रहे हैं।

सम्यग्दर्शन प्रकट होने पर इहलोक, परलोक, आदि सप्त भयों से रहित होने से चैतन्य की मस्ती में मस्त ज्ञानी विचार करते हैं तब उन्हें एहसास होता है कि वे देहधारी है। धन्य है वह दशा!!!! **वह दशा लाई नहीं जाती है। अहो!! द्रव्य के आश्रय से सहज ही देह होने पर भी देहातीत दशा प्रकट होती है।**

लोक में स्वयं के देह को देने वाले पिताजी की मृत्यु होने पर श्राद्ध होता है, अलौकिक मार्ग में आत्मा के आश्रय से देह होने पर भी स्वयं के देह की मृत्यु होने पर आत्मा की श्रद्धा होती है। देह देने वाला देह मरा कि श्राद्ध हुआ और देह मरा कि श्रद्धा हुई। **याद रहे, आत्मा की श्रद्धा होते ही देह के परमाणु तत्काल ही बिखर नहीं जाते, ज्ञानी की दृष्टि से ओझल हो जाते हैं।**

सम्यग्दृष्टी पागल हो सकते हैं, परन्तु याद रहे कि पागल सम्यग्दृष्टी नहीं हो सकते अर्थात् आग्रह एवं मोह के नशे में लीन जीव सम्यग्दृष्टी नहीं हो सकते। सद्गुरु के सानिध्य में बैठने के लिए भी आग्रह छोड़ना अनिवार्य है और चैतन्य परमात्मा में वास करने के लिए मोह का नशा छूटना अनिवार्य है।

सम्प्रदाय के आग्रह में अटककर स्वयं को धर्मी मानने वाले मताग्रही गली-गली में मिल जायेंगे। परन्तु इस कलिकाल में सच ही सद्गुरु का योग मिलना, अत्यंत दुर्लभ है। सद्गुरु की दृष्टि में व्यक्ति प्रधान नहीं होता, बल्कि स्वरूप प्रधान होता है। यदि सद्गुरु ने किसी महापुरुष के गुणगान गाये भी हों, तो व्यक्ति के कारण नहीं, उस महापुरुष की महानता के कारण जिन्होंने व्यक्ति को नहीं, स्वरूप को प्रधानता दी थी।

जिनका पाप मल गल गया हो, वे ही पागल हैं। मोह से बड़ा कोई पाप नहीं है, इसलिए सम्यग्दृष्टी ही सच्चे पागल हैं। यहाँ अज्ञानियों का बहुमत है, अज्ञानी बहुमत से प्रभावित होता है। अज्ञानी अज्ञानियों से प्रभावित होता है। जिस वीतराग मार्ग पर ज्ञानी यात्रा करते हैं, अज्ञानी को वह मार्ग रुचिकर नहीं लगता है।

क्षायिक सम्यग्दृष्टी पवनंजय ने जब अंजना को देखा तो देखते ही राग की तीव्रता के कारण पागल हो गये थे। वे अंजना से ही शादी करना चाहते थे। क्षायिक सम्यग्दृष्टी को भी स्त्री के प्रति ऐसा भोग का भाव आ सकता है कि स्त्री के रूप को देखकर बेहोश भी हो जायें। देह की बेहोशी में ज्ञानी की आत्मजागृति यथावत् टिकी रहती है। जैसे अज्ञानी को देह की जागृति में आत्मा की बेहोशी होती है, ऐसे ही ज्ञानी को देह की बेहोशी में आत्मा की जागृति होती है।

उन्हीं पवनंजय को अंजना के प्रति राग का द्वेष में रूपांतरण हो गया और एक छोटी-सी घटना के कारण शादी के बाद बाईस साल तक उस अंजना का चेहरा नहीं देखा, जिस अंजना का मुख देखकर शरीर से बेहोश हो गये थे।

यद्यपि राम क्षायिक सम्यग्दृष्टी थे, फिर भी सीता के वियोग में वन में पशु-पक्षियों से सीता के समाचार पूछते थे। एक अज्ञानी में भी इतनी समझ होती है कि पशु-पक्षियों से अपनी पत्नी के बारे में पूछना व्यर्थ है, फिर क्षायिक सम्यग्दृष्टी ऐसा पागलपन क्यों करते हैं? याद रहे राम को सीता के प्रति राग का भाव था, मोह का नहीं। वह तो चारित्र मोह का उदय था, दर्शन मोह का नहीं। राम को सीता में अत्यंत राग था, परन्तु सीता की खोज करने के विकल्प में भी अपनापन नहीं था, यही कारण है कि ज्ञानी रागादि भावों की तीव्रता होने पर भी अलिप्त भाव के बल पर मुक्ति की ओर यात्रा करते हैं।

क्षायिक सम्यग्दृष्टी राम को भी सीता की अग्नि परीक्षा लेने का भाव आया था। सीता की अग्नि परीक्षा लेकर पश्चाताप भी हुआ था। सीता की विदाई के बाद राम का हृदय शोक की अग्नि में जल रहा था, फिर भी राम का एकत्व आतमराम में ही था, सीता में या शोक के विकल्पों में नहीं।

मत्त एवं उन्मत्त अवस्था में भी सम्यग्दृष्टी का सम्यग्दर्शन कायम टिककर रहता है। जैसे मिथ्यादृष्टी को अकस्मात होने पर देह में से एकत्व बुद्धि छूटती नहीं है, ऐसे ही सम्यग्दृष्टी को भी अकस्मात होने पर आत्मा में से अपनापन छूटता नहीं है।

जब अज्ञानी के राग के विकल्प की एवं स्वार्थ की सिद्धि नहीं होती है, तब वह ज्ञानी को पागल कहने लगता है। गृहस्थ अवस्था के त्यागी वीतरागी मुनिराजों को कायर एवं निर्दय सम्बोधित करता है। यदि वीतरागी मुनिराज एवं वीतरागी भगवान वीर नहीं हैं, तो फिर इस जगत में मिथ्यादृष्टी, अज्ञानी, रागी जीव वीर होंगे क्या?

१६. अविरत सम्यग्दृष्टी से तीर्थंकर

सम्यग्दर्शन प्रकट होने पर जितने अंशो में वीतरागता प्रकट हुई है, शुद्ध परिणति प्रकट हुई है, उतने अंशो में कर्मों की निर्जरा होती है, परन्तु जितने अंशो में रागादि भाव है, अशुद्ध परिणति है, उतने अंशो में कर्मों का आश्रव एवं बंध होता है। ज्ञानी को स्वयं की दृष्टि की बीमारी दूर होने पर यथार्थ जगत के दर्शन करने के पश्चात् अन्य दृष्टिहीन का उपचार करने का भाव आता है। **ज्ञानी के ज्ञान में जो दृष्टिहीन हैं, वे ही दृष्टिहीन ज्ञानी की दृष्टि में सिद्ध परमात्मा हैं।**

अणुव्रत एवं महाव्रत पालन करने की बाह्य क्रिया तो अत्यंत दूर, उन व्रतों के पालन करने के भाव से भी अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में उत्कृष्ट पुण्य का बंध हो सकता है। तीर्थंकर प्रकृति के पुण्य का बंध होने योग्य शुभराग सम्यग्दृष्टी को ही आता है। आत्मज्ञान प्रकट होने के पश्चात् ही ऐसा शुभराग आता है और उस शुभराग से बंधने वाले पुण्य का उदय केवलज्ञान प्रकट होने पर ही आता है। ऐसे शुभराग को भी जिन्होंने अपना स्वरूप नहीं माना है, ऐसे अव्रती क्षायिक सम्यग्दृष्टी राजा श्रेणिक को चौथे गुणस्थान में अणुव्रत एवं महाव्रत नहीं होने पर भी सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पुण्य प्रकृति का बंध होता है।

आशय यह है कि अणुव्रत और महाव्रत पालन करने के भावों से ही पुण्य का बंध नहीं होता है। **सम्यग्दर्शन के साथ सोलहकारण शुभ भावना तीर्थंकर प्रकृति के बंध का निमित्त होती है, आत्मा में प्रकट होने वाली निर्मलता नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं।**

सार यह है कि जिसे पुण्य की रुचि है, उसे संसार की रुचि है। जिसने पुण्य को अपना स्वरूप माना है, उसने जड़ को अपना स्वरूप माना है। साधक को अणुव्रत एवं महाव्रत का पालन करने के विकल्पों में उलझने से पूर्व सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिए।

१७. श्रद्धा एवं जागृति

आत्मजागृति ही धर्म है। **श्रद्धा एवं जागृति इन दोनों शब्दों में भेद हैं, परन्तु भाव में कोई भेद नहीं है। श्रद्धा गुण का शुद्ध परिणमन ही आत्मजागृति है।** ज्ञानी को सदैव सम्यग्दर्शन होता है अर्थात् ज्ञानी को सदैव आत्मजागृति रहती है। जागे को सदा ही सुबह है और सोये को सदा ही रात।

ज्ञानी सदैव जागृत है, अत: ज्ञानी की दृष्टि में दिन एवं रात का भेद दूर हो चुका है। लोक में दिन-रात होते रहते हैं, परन्तु ज्ञानी की दृष्टि पुद्गल के प्रकाश एवं अंधकार पर नहीं, बल्कि चैतन्य के त्रिकाल प्रज्वलित ज्ञान दीपक पर होती है।

जैसे कोई व्यक्ति अपने घर में सो रहा हो और स्वप्न में मानता हो कि वह अमेरिका के किसी शहर में घूम रहा है। उस व्यक्ति को अपनी मातृभूमि की याद आये और वह भारत भूमि वापिस लौटना चाहे, तो उसे टिकट खरीदकर एयरपोर्ट जाकर विमान में बैठकर यात्रा करने की कोई जरूरत नहीं होती। जैसे ही वह व्यक्ति उठता है कि वह पाता है कि वह भारत में ही है।

ऐसे ही स्वरूप में स्थित होने के लिए कुछ भी नहीं करना है। जागने पर यह भ्रम सहज ही दूर होता है कि मैं परद्रव्य या परभाव में वास करता था। मैं चैतन्य परमात्मा सदैव स्वरूप में स्थित हूँ, एक समय के लिए भी स्वरूप की सत्ता का नाश नहीं हुआ है। प्रतिसमय जानना-जानना परिणमन हो ही रहा है।

जैसे रात्रि में दीपक को प्रज्वलित करके सुबह भी प्रज्वलित देखने पर यह श्रद्धा होती है कि यह दीपक सारी रात बिना बुझे जल रहा था, ऐसे ही आत्मा

में प्रतिसमय जानने-जाननेरूप परिणमित होने वाले ज्ञान की सत्ता के स्वीकार से त्रिकाल ज्ञान स्वभावी भगवान आत्मा की यथार्थ श्रद्धा होती है।

तीर्थंकरादि महापुरुष जन्म से ही सम्यग्दर्शन सहित मति-श्रुत-अवधि ये तीन ज्ञान के धारक थे। अत: तीर्थंकर भगवान के इस जीवन काल की घटनाओं में सम्यग्दर्शन प्रकट होने का उल्लेख नहीं मिल सकता। अज्ञानी मुनिधर्म अंगीकार करना चाहता है, क्योंकि तीर्थंकरों ने मुनिधर्म अंगीकार किया था।

यदि कागज की तस्वीर पर बरसात गिरे, तो वह तस्वीर को बिखेर कर नष्ट कर देती है, जबकि पत्थर की प्रतिमा पर बरसात गिरे, तो वह प्रतिमा को उभार देती है।

सिर्फ अज्ञानी को ही नहीं, ज्ञानी को भी पाप का उदय आता है। परन्तु अज्ञानी प्रतिकूल संयोगों में निराश होकर आकुलित होता हुआ दु:ख भोगता है, जबकि ज्ञानी प्रतिकूल संयोगों में भी स्वरूप की जागृति के बल पर ज्ञान का अनुभव करते हुए सुख भोगते हैं।

प्रतिकूल संयोगों में भेदविज्ञान के बल पर ज्ञानी की परिणति की शुद्धि में वृद्धि होती ही रहती है। अज्ञानी कागज की तस्वीर जैसा होता है और ज्ञानी संगमरमर की प्रतिमा जैसे।

जब तीर्थंकर भगवान के शरीर के परमाणु भी इस पृथ्वी पर पहचाने नहीं जाते, तीर्थंकर भगवान का समवसरण भी बिखर गया, तो मेरा शरीर और मेरी धर्मसभा का क्या कहना?

देवकृत समवसरण का एक रत्न भी अब यहाँ देखने को नहीं मिलता है। ऐसे रत्नों की क्या महिमा, चंद बरसों के बाद जिनकी कोई निशानी न मिले?

तीर्थंकर भगवान के सुंदर देह के परमाणु इस पृथ्वी पर कहाँ हैं? पृथ्वी की जाति के परमाणु पृथ्वी में ही मिलेंगे, उसमें ही उन परमाणु की शोभा हैं और सिद्धों की जाति का शुद्धात्मा सिद्धालय में सिद्धों के साथ विराजमान हो, इसी में शुद्धात्मा की शोभा है।

प्रतिसमय जागृति रहे कि दूसरे जीवों की चारित्र सम्बन्धी कमजोरी के कारण स्वयं का संसार परिभ्रमण नहीं है, बल्कि स्वयं की श्रद्धा सम्बन्धी कमजोरी संसार परिभ्रमण का मूल कारण है।

मैंने सारे जगत के समस्त जीवों को मोक्ष भेजने का ठेका नहीं लिया है। अत: किसी भी जीव की कषाय की मंदता को जाने बिना ही तत्त्वोपदेश प्रारम्भ करके कषाय की आग में जलना यह आत्मार्थी का कर्त्तव्य नहीं है।

जब ज्ञानी कहते हैं कि ज्ञाता-दृष्टा रहना ही धर्म है, इस कथन का आशय ऐसा नहीं है कि परद्रव्यों का कर्ता-धर्ता मिटकर मुझे ज्ञाता-दृष्टा रहने का उपदेश दिया जा रहा है। वास्तव में मैं भगवान आत्मा ज्ञाता-दृष्टा ही हूँ, इस सत्य का स्वीकार करना ही ज्ञाता-दृष्टा रहना है।

जागृति का अर्थ ऐसा नहीं है कि ज्ञानी लोक व्यवहार के दौरान बात-बात में निश्चय नय से प्ररुपित सिद्धांतो को बोलते रहते हैं। वास्तव में निश्चय नय के कथन को वाणी में नहीं बोलना चाहिए और व्यवहार नय के कथन को वस्तु स्वरूप समझकर श्रद्धान में नहीं मान लेना चाहिए।

आत्मजागृति के बल पर ज्ञानी भूतकाल के कर्मोदय के निमित्त से उत्पन्न होने वाले अट्ठाईस मूलगुणों एवं ग्यारह प्रतिमाओं के पालन करने के विकल्पों को अत्यंत दूर से जानते हैं और स्वयं को उन विकल्पों से न्यारा चैतन्य तत्त्व मानते हैं।

क्षणिक जगत की अनित्यता की असारता के बोध के बल पर ही नित्य चैतन्य तत्त्व की अनुभूति की यात्रा प्रारम्भ होती है। **ज्ञानी को जागृति है कि प्रत्येक पर्याय अनित्य है, क्षणिक है और एक मात्र चैतन्य तत्त्व ही सारभूत है। मैं त्रिकाल प्रज्वलित ज्ञान दीपक ही हूँ।**

१८. श्रद्धा से सबुरी

सम्यग्दर्शन मोक्ष का बीज है। जिस जमीन में बीज बो चुके हो वह जमीन और जिस जमीन में बीज न बोया हो वह जमीन, इस प्रकार बाहर से देखने पर दोनों जमीनें एक-सी दिखाई देती हैं। ऐसे ही ज्ञानी और अज्ञानी की बाहरी क्रिया वर्तमान में एक समान दिखाई देती होने पर भी याद रहे, ज्ञानी बीज बो चुके हैं और अज्ञानी को बीज बोना बाकी है।

जैसे किसी व्यक्ति ने एक पत्थर पर निन्यानवें हथौड़े मारे, फिर भी वह पत्थर नहीं टूटा, तब किसी मित्र ने कहा कि लाओ, हथौड़ा मुझे दो और मित्र ने एक ही प्रहार में पत्थर को तोड़ दिया। वास्तव में मित्र ने एक ही प्रहार में पत्थर को नहीं तोड़ा है, उस पत्थर पर पहले से ही लगे निन्यानवें हथौड़े से वह पत्थर अन्दर से इतना टूट गया था कि उसे एक और हथौड़े के प्रहार की ही जरूरत थी।

ऐसे ही **सम्यग्दर्शन एक ही समय में होता है, परन्तु सम्यग्दर्शन से पूर्व असंख्य समय तक होने वाला चैतन्य तत्त्व का विचार निर्विकल्प आत्मानुभूति में कारण बनता है।**

साधक का कर्तव्य है कि वह निरंतर तत्त्वविचार करता रहे और सम्यग्दर्शन प्रकट होने के विकल्पों की जाल में न उलझे। क्योंकि नौ महिने में जन्म लेने वाले बच्चे को समय से पूर्व पाँच महिने में जन्म देने की चेष्टा से बच्चे की मृत्यु ही होगी।

चूंकि सम्यग्दृष्टी को ही सर्वज्ञता पर श्रद्धा होती है, अत: उन्हें ही क्रमबद्धपर्याय के सिद्धांत की यथार्थ श्रद्धा होती है, अत: सम्यग्दृष्टी को ही सबुरी अर्थात् सब्र होता है, धैर्य होता है, निराकुलता होती है। धैर्य का अर्थ आलस नहीं समझना चाहिए। भवभ्रमण का खेद होने पर भी वे आकुलित नहीं होते। चैतन्य स्वरूप की जागृति के बल पर मृत्यु इसी समय आये या लाखों वर्ष देह में रहे, ज्ञानी को श्रद्धा से सबुरी है, सब्र है।

१९. श्रद्धानी योद्धा से सिद्धा

अपने में अपनापन और पराये में परायेपन की श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शन ही धर्म का मूल है। सम्यक् श्रद्धा ही सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र का आधार है। अज्ञानी स्वयं को देह स्वरूप मानते हैं, इसलिए वे आत्मा के धर्म को भी देह की क्रिया में ही मानते हैं। मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्व के कारण युद्ध लड़ने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टी भरत चक्रवर्ती को पापी देखते हैं, परन्तु भरत चक्रवर्ती उन्हें पापी देखने वाले जीवों को परमात्मा के रूप में देखते हैं अर्थात् द्रव्यदृष्टि के बल पर ज्ञानी प्रत्येक आत्मा को परमात्मा के रूप में देखते हैं। युद्ध करना चारित्र सम्बन्धी कमजोरी है और प्रत्येक आत्मा को परमात्मा के रूप में देखना सम्यग्दर्शन का बल है।

स्वरूप की श्रद्धा के बल पर ज्ञानी योद्धा भी होते दिखाई देते हैं। चारित्र की कमजोरी भी चैतन्य स्वरूप में मिल नहीं सकती है, ऐसी श्रद्धा के बल पर ज्ञानी को चारित्र सम्बन्धी कमजोरी छूटने में देर नहीं लगती है।

भरत चक्रवर्ती, सौधर्म इन्द्र, लौकांतिक देव, सर्वार्थसिद्धि के देव, इन चार क्षायिक सम्यग्दृष्टी धर्मात्माओं के दृष्टांत से श्रद्धा एवं चारित्र के भेद को एवं चारित्र की तुलना में श्रद्धा को अधिक प्रधानता देने का कारण समझा जा सकता है।

(१) क्षायिक सम्यग्दृष्टी भरत चक्रवर्ती को अपने भाई बाहुबली पर चक्र छोड़ने का भाव।

(२) क्षायिक सम्यग्दृष्टी सौधर्म इन्द्र को तीर्थंकर के जन्म कल्याणक में नाचने का भाव।

(३) क्षायिक सम्यग्दृष्टी लौकांतिक देव को तीर्थंकर के प्रथम दो कल्याणकों में तो आने का भाव ही नहीं आता है, उनका दीक्षा कल्याणक में आने का भाव।

(४) क्षायिक सम्यग्दृष्टी सर्वार्थसिद्धि के देवों को पंच कल्याणक महोत्सव में आने का भाव ही नहीं आता है, उनका तैंतीस सागरोपम वर्षों तक तत्त्वचर्चा करने का भाव।

उपरोक्त चार क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में किनका भाव सर्वाधिक हीन है? आप यह स्वीकार करेंगे कि भरत चक्रवर्ती का अपने भाई पर चक्र छोड़ने का कषाय भाव सर्वाधिक हीन है। अहो! कैसा अद्भूत स्वरूप है? जिन ज्ञानी का भाव हमें सर्वाधिक हीन नजर आता है, वह ज्ञानी ही तद्भव मोक्षगामी हुए और देवगति के तीन क्षायिक सम्यग्दृष्टी भले कितने ही उत्कृष्ट शुभभाव भाते हो, वे तद्भव मोक्षगामी नहीं होंगे। आशय यह है कि ज्ञानी की चारित्र सम्बन्धी कमजोरी कैसी भी क्यों न हो? श्रद्धा यथार्थ होते ही सम्यग्दर्शन होने पर कषायभाव दूर होने में देर नहीं लगती है। हम जानते हैं कि भरत चक्रवर्ती को अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कषाय मिट चुके थे, फिर भी भरत चक्रवर्ती को अपने भाई पर चक्र छोड़ने का भाव आया, इससे अधिक क्रोध कैसा हो सकता है? अनन्तानुबन्धी क्रोध का सम्बन्ध निज आत्मा के साथ है। निजात्मा के प्रति क्रोध अनन्तानुबन्धी क्रोध है। यथार्थ श्रद्धा के बल पर ही योद्धा भी तद्भव सिद्ध होते हैं।

हे चैतन्य परमात्मा! हे भव्य! आयुष्य के उदय की समाप्ति का ज्ञान नहीं है, परन्तु निज परमात्मा को श्रद्धा में स्थापित करने पर अनन्त सिद्ध सहज ही श्रद्धा में स्थापित हो जाते हैं, आत्मा स्वयं सिद्ध हो जाता है। इतनी समझ ही पर्याप्त है। आप जहाँ भी रहो, जैसे भी उदय के साथ रहो, प्रतिसमय यह श्रद्धा रहे कि आयु का उदय समाप्त होने पर भी मैं चैतन्य परमात्मा समाप्त होने वाला नहीं हूँ। मैं चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा सदैव हूँ, हूँ, हूँ...।

लेखक की सर्वाधिक लोकप्रिय रचनायें

१. १४२ ज्ञान दीपक! बोधामृत (गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी)
२. आत्मसिद्धि शास्त्र संक्षिप्त टीका (१४४ देशों में उपलब्ध)
३. ज्ञायकभाव प्रकाशक – समयसार टीका (अंग्रेजी)
४. ज्ञान से ज्ञायक तक (हिन्दी, गुजराती)
५. आत्मसिद्धि अनुशीलन (गुजराती, अंग्रेजी)
६. महावीर का वारिस कौन? (गुजराती)
७. क्षणिक का बोध और नित्य का अनुभव (गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी)
८. मंगल सूत्र – चैतन्य स्वभाव (हिन्दी)
९. जैनधर्म रहस्य (हिन्दी)
१०. पुण्यविराम (गुजराती)
११. क्रमवद्ध पुरुषार्थ (हिन्दी, गुजराती)
१२. मुझे मत मारो (इंडोनेशियन)
१३. आतंकवाद में अनेकांतवाद (हिन्दी, अंग्रेजी)
१४. स्वरूप ही ऐसा है (गुजराती, हिन्दी)
१५. मरण का हरण (हिन्दी)
१६. अंक अंकित अध्यात्म(हिन्दी)
१७. आध्यात्मिक शब्दकोष (हिन्दी)
१८. ध्यान से पूर्व तत्त्वविचार (हिन्दी, गुजराती)
१९. ज्ञानदर्पण सहस्त्री (हिन्दी)

चैतन्य स्वभावी भगवान आत्मा अनादि-अनंत शुध्द चैतन्य मात्र है, ज्ञान मात्र है। मैं शुध्द चैतन्य मात्र, ज्ञान मात्र, भगवान आत्मा हूँ। तीन लोक के किसी भी प्रदेश पर रहकर भी, मैं चैतन्य प्रदेशों पर ही स्थित हूँ। मैं देहरूपी राख की दीवार का पड़ोसी चैतन्य परमात्मा हूँ। मैं अपने चैतन्य महल की ज्ञान की खिड़की से मेरी पड़ोसन राख की दीवार को मात्र जानता-देखता हूँ। राख की दीवार के माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, परिवारजन अत्यंत दूरवर्ती हैं। धन का ढेर धूल की दीवार, महल मिट्टी की दीवार, देह राख की दीवार और रिश्ते कांच की दीवार हैं। इन दीवारों से बना संसाररूपी हवामहल अपनापन करने योग्य नहीं। चैतन्य रस के घनपिंड में परद्रव्य तो दूर, परभाव को भी प्रवेश करने के लिए अवकाश नहीं है। प्रशंसक और निंदक की वाणी तो दूर, वाणी के विकल्प भी मुझमें प्रवेश नहीं कर सकते। ज्ञान जानता है, वह झुकता नहीं है और राग झुकता है, वह जानता नहीं है। रागादि विकल्परूपी वैतरणी अधोलोक में बहती है, चैतन्य मध्यलोक में ज्ञान की गंगा ही बहती है। चैतन्य सत्ता रागादि विकल्प एवं देह की क्रिया करने नहीं जाती, इसलिए रागादि विकल्प एवं देह की क्रिया का कर्ता नहीं। मैं चैतन्य सत्ता मात्र हूँ।

MULTY GRAPHICS
(022) 23873222 • 23884222